चन्दामामा
अक्तूबर १९८४
RS

गले से 'खिचखिच' दूर करो...

'खिचखिच' है क्या?
जब भी आपके गले में खराश हो या गला सूखा लगने लगे— तो समझिए आपके गले को 'खिचखिच' ने पकड़ा.

विक्स लीजिए, इसे दूर कीजिए
विक्स लीजिए.
विक्स खांसी की गोलियों में गले को आराम पहुंचाने वाली ६ विक्स औषधियां हैं, जो 'खिचखिच' दूर हटाती हैं.

इसलिए, जब भी गले में 'खिचखिच' हो, विक्स लो.

OBM/1829-HN

४.५० लाख रुपये के ६ पुरस्कार

दिल्ली के मुख्य कार्यकारी पार्षद, श्री जगप्रवेश चन्द्र ने छात्रों के लिए 'स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास' पुस्तक लिखने के लिए पुरस्कार की राशि और संख्या बढ़ाने की घोषणा की है। अब ६ पुरस्कार दिए जाएंगे जिनकी कुल राशि एक लाख रुपये की बजाए ४.५० लाख रुपये होगी। पुरस्कार इस प्रकार होंगे:-

प्रथम पुरस्कार—
१.५० लाख रुपये (एक अंग्रेज़ी-एक हिन्दी)
दूसरा पुरस्कार—
५० हज़ार रुपये (एक अंग्रेज़ी-एक हिन्दी)
तीसरा पुरस्कार—
२५ हज़ार रुपये (एक अंग्रेज़ी-एक हिन्दी)

वित्त मंत्रालय ने इन पुरस्कारों को राज्य पुरस्कार घोषित किया है और ये पुरस्कार आय कर से मुक्त होंगे।

लेखकों के लिए पुस्तक के सम्बन्ध में कुछ निर्देश इस प्रकार हैं:-

इस पुस्तक के लिए भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के इतिहास की अवधि १८५७ से १९४७ तक है। पुस्तक की पाण्डुलिपि अंग्रेज़ी या हिन्दी किसी भी भाषा में हो सकती है। पाण्डुलिपि में लगभग ४०००० शब्द होने चाहिए।

लेखकों को पाण्डुलिपि की ३-३ प्रतियाँ रजिस्ट्री द्वारा पावती रसीद के साथ ३१ दिसम्बर, १९८५ तक सचिव, मुख्य कार्यकारी पार्षद, दिल्ली प्रशासन, पुराना सचिवालय, दिल्ली-११००५४ को भेज देनी चाहिए।

इन पाण्डुलिपियों की जाँच प्रसिद्ध लेखकों और ख्याति प्राप्त इतिहास विदों की एक समिति द्वारा की जाएगी। इस सम्बन्ध में समिति का फैसला अन्तिम होगा और सभी सम्बद्ध व्यक्तियों के लिए मान्य होगा।

प्रथम पुरस्कार प्राप्त करने वाली पाण्डुलिपि के सर्वाधिकार, दिल्ली प्रशासन, के पास होंगे।

दूसरा और तीसरा पुरस्कार प्राप्त करने वाले लेखक तथा अन्य लेखक किसी भी प्रकाशक से अपनी पुस्तक छपवा सकेंगे।

इस सम्बन्ध में किसी स्पष्टीकरण या सुझाव के लिए कृपया मुख्य कार्यकारी पार्षद, दिल्ली प्रशासन, पुराना सचिवालय, दिल्ली-११००५४ को लिखें।
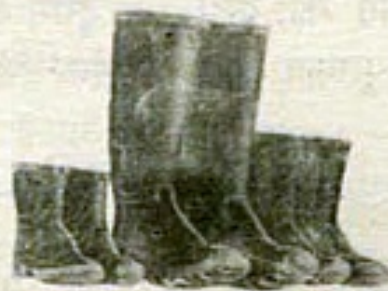
चन्दामामा

संस्थापकः 'चक्रपाणी' संचालकः नागिरेड्डी

व्यक्ति की संगति उसे अच्छे या बुरे कार्य करने की प्रेरणा देती है। यदि एक व्यक्ति अच्छे लोगों की संगति में उठता-बैठता है तो उसे उन सब कार्यों में रुचि होती है जिनसे किसी की हानि न हो, और यदि सम्भव हो सके तो दूसरों का भला ही हो जाये। चाहे किसी व्यक्ति के अपने मन में कोई पाप की प्रवृत्ति न भी हो, अपने साथियों को देख-सुनकर यह स्वाभाविक है कि उसके मन में भी उनके जैसा ही व्यवहार करने की लालसा जागे। इस प्रकार कुसंगति के प्रभाव से वह अपने आपको, अपने कर्म को, अपने धर्म को भूल जाता है।

इसके विपरीत यदि वह अच्छे लोगों की संगति करता है तो उसे हर क्षण अच्छे कार्य करने की ही प्रेरणा मिलती है। यह बात अलग है कि बुरी संगति बड़ी आसानी से मिल जाती है और अच्छी संगति को ढूँढ़ने के लिए अथक प्रयास करना पड़ता है, परन्तु व्यक्ति को सोचना चाहिए कि कठिनाइयाँ मार्ग का अवधान तो हो सकती है, उसका अन्त नहीं। उसे निरन्तर प्रयासशील रहना चाहिए कि कठिनतम परिस्थितियों में भी अपने धर्म को न छोड़े और अपने कर्म को करता रहे।

तुम अभी बच्चे हो। तुम्हारे समक्ष पूरा जीवन पड़ा है। उसे तुम्हींने संवारना है, सुधारना है। प्रयत्न करो कि तुम्हारी संगति ऐसे लोगों के साथ हो जो तुम्हें तुम्हारे इस ध्येय को प्राप्त करने में सहायता करें। विश्वास करो, सफलता तुम्हारे चरण चूमेगी।

वर्षः ३८ अक्तूबर १९८४ अंकः २
एक प्रतिः २-०० :: वार्षिक चन्दाः २४-००
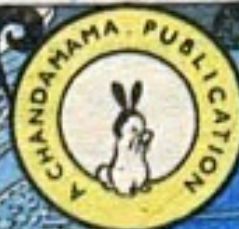
सिगरेटों से खतरा

सिगरेट पीने से जो कैन्सर होता है उसके कारण विश्व में प्रति वर्ष ४३ लाख व्यक्ति अपने प्राणों से हाथ धो बैठते हैं। ऐसी मृत्युएँ एशिया में अधिक संख्या में हो रही हैं।

भयानक जानवर

आस्ट्रेलिया के सुप्रसिद्ध नाटक दर्शक मैक मुल्लिन्स का कथन है कि समस्त जानवरों में अत्यन्त भयानक जन्तु मानव है। उनका विचार है कि मानव द्वारा निर्मित अणुबम तथा वायु-प्रदूषण समस्त विश्व का सर्वनाश कर सकते हैं। वे सिडनी के चिड़ियाघर में २२ दिन तक एक कठघरे में बन्द रहे और उसके सामने यह नामपट लगवायाः "समस्त विश्व में अत्यन्त भयानक जानवर।"

संगीत जानने वाला कम्प्यूटर

पिलानी के बिरला इंस्टिट्यूट ऑफ़ टेक्नालोजी में गीतों की सारी जानकारी देने वाला एक कम्प्यूटर है। यदि हम एक राग का नाम लेते हैं तो बस यह कम्प्यूटर उस राग में गाये गये फिल्मी गीतों की पूर्ण सूची कुछ ही क्षणों में हमें दे देता है।

क्या आप जानते हैं ?

१. रेड क्रास सोसाइटी (१८६४) की स्थापना किसने की थी ?
२. सर्वप्रथम अन्तरिक्ष में 'पैदल चलने वाला' व्यक्ति कौन है ?
३. दक्षिणी ध्रुव पर सबसे पहले कौन पहुँचा ?
४. संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रथम महासचिव कौन थे ?
५. प्रथम विश्व धर्म सम्मेलन में भाषण देने वाले प्रथम भारतीय कौन थे ?

(उत्तर पृष्ठ ६४ पर देखें)

चोर और वृद्ध

दामोदर का परिवार सम्पन्न था। एक रात जब वह गहरी नींद में था, एक चोर उसके कमरे में घुस आया। उसने तिजोरी खोलकर सोना, चाँदी और मुद्राएँ निकाल ली। जैसे ही वह उन्हें गठरी में बांधकर चलने लगा, उसका पैर किसी चीज़ से टकरा गया। आवाज़ सुनकर दामोदर जाग गया।

चोर ने उसे छुरी दिखाकर कहा, "खबरदार! चुप रहो। चिल्लाओगे तो तुम्हारी छाती में भौंक दूँगा।"

दामोदर की डर के मारे घिग्गी बंध गई। चोर अवसर का फ़ायदा उठाकर भाग गया। कुछ समय बाद दामोदर में हिम्मत आई और वह चिल्ला पड़ा, "चोर, चोर!"

उसकी चिल्लाहट सुनकर घर के सारे लोग जाग गये। पड़ोसी भी बाहर निकलने लगे। हलचल सुनकर चोर मकान की चहार दीवारी लाँघ कर थोड़ी दूर सड़क पर दौड़ा, फिर समीप के एक मकान की चहार दीवारी पार करके उसके अन्दर घुस गया।

मकान के अन्दर पहुँचकर उसके दिमाग़ में आया, "क्यों न इस घर में भी मैं अपना हाथ आजमा लूँ?" यह सोचकर वह शयनकक्ष में घुस गया। वहाँ दीप जल रहा था और चारपाई पर एक वृद्ध बैठा था।

चोर कमर से छुरी निकालकर धीरे से वृद्ध की ओर बढ़ने लगा। वृद्ध चुपचाप बैठा रहा। चोर बिल्कुल उसके समीप आ गया। अचानक वृद्ध बोल उठा, "बेटा, तुम आ गये?"

चोर घबरा उठा, परन्तु जब उसने ध्यान से देखा तो समझ में आया कि वृद्ध उसकी ओर न देखकर सीधे दरवाज़े की ओर ही देख रहा था। इसका अर्थ था कि वह अन्धा था। चोर चालाक था। उसने छुरी कमर में खोंस ली और

"वसुन्धरा"

बोला, "जी नहीं; मैं आपके बेटे का मित्र हूं।"

"क्या वह अभी तक नहीं लौटा ? शराबखाने में ही लोट रहा है ?" वृद्ध चिन्तित स्वर में बोला ।

इस पर चोर ने समझ लिया कि वृद्ध का पुत्र शराबी है और हमेशा शराबखाने में पड़ा रहता है। वह बोला, "दादा, वह आज रात को घर नहीं लौटेगा। मैं यहीं बात बताने आया हूं। पानी पीकर चला जाऊंगा ।"

"हर रोज़ उसकी यही हालत है। उसका इन्तज़ार करने का कोई फ़ायदा नहीं है। मैं अब लेट जाता हूँ। पानी साथ के कमरे में है। पीकर चले जाओ ।" यह कहकर वृद्ध चारपाई पर लेट गया ।

चोर को लगा कि वहाँ से बचकर भाग निकलने का यही एक अच्छा अवसर है। उसने कमरे के कोने में धन की थैली और छुरी को छिपा दिया। फिर वहीं दीवार पर टंगे कुर्ते और धोती को पहन लिया। अब वह एक शरीफ़ आदमी जैसा दिखने लगा ।

"बेटा, क्या करते हो ?" वृद्ध ने पूछा ।

"दादा, पानी पी चुका हूं। अब मैं जा रहा हूँ। आकर दरवाज़ा बन्द कर लीजिये," चोर ने कहा ।

"दरवाज़ा क्यों बन्द करूँ, बेटा ? मैं सो जाता हूँ तो फिर रात भर जागने का नाम नहीं लेता। आधी रात के बाद यदि मेरा बेटा घर लौटा तो वह अन्दर कैसे आएगा ?" वृद्ध चारपाई पर लेटे-लेटे ही बोला ।

"दरवाज़ा खुला रहे तो चोर-उचक्के के अन्दर घुसने का ख़तरा होता है, दादा," चोर बोला ।

"चोर के चुरा ले जाने के लिए हमारे घर में रखा ही क्या है ? दरवाज़ा खुला ही रहने दो," वृद्ध ने कहा ।

मन ही मन चोर को वृद्ध पर दया आई। कभी उसके बेटे से भेंट हो जाये तो उसे अच्छा सबक सिखाने का उसने अपने मन में निश्चय कर लिया ।

इसके बाद चोर निडर होकर गली में आ गया। ठीक उसी समय चोर की खोज करने

वाली भीड़ में से एक टुकड़ी उस ओर आ निकली ।

चोर को वहाँ देखकर उन लोगों ने सोचा, "यह तो हमारे गाँव का निवासी नहीं है । यह यहाँ इस समय क्या कर रहा है ?"

उनमें से एक आदमी ने चोर से पूछा, "तुम कौन हो ? इस समय यहाँ क्या कर रहे हो ?"

चोर ने कहा, "मैं उस सामने मकान में रहने वाले वृद्ध के बेटे का मित्र हूँ । उन्हें एक समाचार देने आया था ।"

"चलो, इस बात में कहाँ तक सचाई है, उस वृद्ध से ही पूछेंगे," एक आदमी बोला ।

चोर के पास कोई चारा न था । वह उनके साथ चल पड़ा । सब लोग वृद्ध के घर पहुँचे । अन्दर पहुँचकर उन्होंने देखा कि वृद्ध चारपाई पर बैठा हुआ दरवाज़े की ओर ही देख रहा था ।

भीड़ में से एक आदमी ने पूछा, "बाबा, हमने इस अजनबी आदमी को तुम्हारे घर से बाहर निकलते देखा है । यह कहता है कि तुम्हारे बेटे का मित्र है । क्या यह बात सच है ?"

वृद्ध ने उन लोगों की ओर एक नज़र दौड़ा कर कहा, "इसकी बातों में एक भी सच नहीं है । यह तो चोर है । यह एक थैली और छुरी लेकर अन्दर आया था । उन दोनों चीज़ों को इसने उधर कोने में छिपा दिया है । चाहो तो तुम लोग देख लो ।"

इस पर दो युवक कमरे के कोने में गये । वहाँ पर उन्हें धन की थैली और छुरी मिल गई । यह देखकर चोर ने भागने की कोशिश की परन्तु कुछ युवकों ने उसे पकड़ लिया ।

"यह सब धोखा है, झूठ है । तुमने अपने आप को अन्धा बताया । मैंने तुम्हारी बात को सच माना । मुझे पकड़वाने के लिए ही तो अन्धे होने का नाटक रचा," चोर ने कहा ।

वृद्ध ने उत्तर दिया, "मैं बूढ़ा और कमज़ोर हूँ । इस पर यदि तुम मुझे अन्धा न समझते तो अवश्य मेरी हानि कर बैठते । यही सोचकर मैंने ऐसा किया ।"

"ऐसी बात है । कभी एक दिन यहाँ आकर तुमसे अवश्य बदला लूँगा," चोर ने गरज कर

कहा ।

वृद्ध ने शान्त स्वर में समझाया, "सुनो बेटा, तुम तो चोर हो । जब तुम मेरे घर में घुस आए, मैं अकेला था । इसलिए आँखें होते हुए भी मैं अन्धा बन गया, पर अपने शरीर में ताकत रखते हुए भी तुम दस लोगों के सामने कमज़ोर हो गए । चोर कमज़ोर आदमी को अन्धा बना देता है और समाज बूढ़े को भी शक्तिशाली बना देता है । यह बात समझकर मुझसे बदला लेने की इच्छा को मन से निकाल दो और अपने चारों ओर निवास करने वालों पर विश्वास जमाओ । तब वे लोग तुम्हें जीने का कोई न कोई रास्ता अवश्य ही दिखायेंगे । उन्हें लूट कर जीने की बात सोचना तुम्हारे लिए ही हानिकारक है ।"

वृद्ध की बातें सुनकर भीड़ में से एक आदमी बोला, "बाबा, तुमने ठीक कहा । आज तक हम यह सोचकर चुप रहे कि दूसरों के घरेलू मामलों में हम क्यों दखल दें परन्तु अब हम चुप नहीं रहेंगे । सारा दिन शराबखाने में पड़े रहने वाले तुम्हारे बेटे को ठीक रास्ते पर लाना ही होगा । यह हम सब की जिम्मेदारी है ।"

चोर को अपने ऊपर बहुत शर्म आई । उसने अपने आप को कानून के हवाले कर दिया ।

बाद में उन लोगों ने वृद्ध के बेटे को सुधारने के लिए भरसक प्रयत्न किया । कुछ समय तक उस पर उन लोगों के कहने-सुनने का कोई प्रभाव नहीं हुआ । अन्त में वे सफल हुए और अपनी सारी बुरी आदतों को छोड़कर वह एक योग्य और ज़िम्मेदार आदमी बन गया ।

उधरर कारागा में बन्दी बने चोर को जब यह ख़बर मिली तो उसकी आँखों में खुशी के आँसू आ गए । उसने सोचा, "मैंने अपने जीवन में अनेक बुरे कार्य किए हैं । मेरे कारण बहुत से लोगों को न केवल अपने धन से हाथ धोना पड़ा है बल्कि अनेक यातनाएँ सहनी पड़ी हैं । चलो, अच्छा हुआ, मेरे कारण किसी का जीवन तो सुधरा ।" कारागार से छूटते ही उसने चोरी के धन्धे को छोड़कर ईमानदारी का जीवन बिताने का निर्णय कर लिया ।

२७

[पद्मपाद ने पिंगल को रेगिस्तानी डाकुओं द्वारा सार्थवाहों को बन्दी बनाई गई गुफा दिखाई। हसन गोरी ने सैनिकों के साथ पहुँच कर सार्थवाहों को मुक्त कराया। इसके बाद पिंगल के अनुरोध पर पद्मपाद ने अपनी मंत्र-शक्ति के बल पर भेड़िये तथा बाघों की सृष्टि करके उनके द्वारा रेगिस्तानी डाकुओं को घिरवा डाला और उनको अपने स्थान पर बुलवाया। बाद...]

प्राणों के डर से कांपते हुए अपने पास आए हुए रेगिस्तानी डाकुओं को देखकर हसन गोरी हँस पड़ा। रेगिस्तानी प्रान्तों में व्यापार करने वालों को लूट कर अनेक वर्षों से अपने पेट भरने वाले ये डाकू उसके हाथ में इस प्रकार आसानी से आ जाएँगे, इसकी कल्पना भी हसन गोरी ने कभी नहीं की थी।

इस विजय का कारण भूत पद्मपाद था, फिर भी हसन गोरी ने सोचा कि नवाब उसी का सम्मान करेगा। इस कारण से हसन गोरी पद्मपाद से बोला, "पद्मपाद, तुम्हारी शक्ति अपूर्व है। इन अत्याचारियों को बन्दी बनाने के लिए मैंने अनेक बार प्रयत्न किया, अनेक परेशानियों का सामना किया परन्तु सफलता नहीं मिली। इस कार्य में कई साल लग गये। आज तुम्हारी मदद से यह संभव हो सका है। अब यह रेगिस्तानी प्रदेश व्यापारियों तथा यात्रियों के लिए यात्रा योग्य हो जाएगा। आप

की कृपा के लिए मैं अत्यन्त आभारी हूँ ।"

पद्मपाद मुस्कुराकर बोला, "मैंने यथाशक्ति तुम्हारी मदद की । मेरा काम समाप्त हुआ । अब इन डाकुओं की सुनवाई करके इन्हें दण्ड देने की जिम्मेदारी तुम्हारी है । मैं अपने भेड़ियों और बाघों को वापस भेज देता हूँ । जो काम इन्होंने करना था वह कर चुके ।" यह कहकर दोनों हाथ उठाकर उसने कोई मंत्र पढ़ा । तुरन्त भेड़िये व बाघ अदृश्य हो गये । पद्मपाद अपनी मुट्ठी में आये कंकड़ों को हसन गोरी व पिंगल को दिखाकर बोला, "ये ही सब भेड़िये और बाघ हैं ।" यह कहकर उन कंकड़ों को दूर फेंक दिया ।

हसन गोरी का आदेश पाकर उसके सैनिकों ने सबसे पहले डाकुओं के नेता भैरवनाथ के हाथों में हथकड़ियाँ लगवाईं; इसके बाद उसके सारे अनुचरों को रस्सों से बँधवा दिया । इस बीच पद्मपाद ने पिंगल को अलग ले जाकर पूछा, "पिंगल, क्या तुम शीघ्र अवन्ती नगर को लौट जाना चाहते हो ?"

"जी हाँ, पद्मपाद ! मेरे दुष्ट भाइयों ने नाविकों के हाथ मुझे बेच दिया, इसके बाद मेरी माताजी को भी वे नाना प्रकार से सताते होंगे । इसके पूर्व उन लोगों ने इसी प्रकार किया था । अपनी माता के प्रति भी उनके दिल में ममता या भक्ति नहीं है," पिंगल ने कहा ।

"तुम्हारी इन सारी मुसीबतों का कारण यह है कि तुम भल्लूक केतु को आवाहन करने वाले मंत्र को भूल गये । लो सुनो, मैं फिर वह मंत्र तुम्हें बताता हूँ । इस बार मंत्र को अच्छी प्रकार

याद रखना, तुम्हारे लिए हितकर रहेगा !" यह कह कर पद्मपाद ने पिंगल को वह मंत्र स्मरण कराया, अपनी कनिष्ठिका की अँगूठी उतार कर पिंगल के हाथ में दे दी, तब कहा, "लो, इस अँगूठी की रक्षा सावधानी से करो। जब भी तुम मुझे देखना चाहो तब मन में मेरी याद करके अँगूठी का स्पर्श कर लेना। बस, तुरन्त तुम्हारे सामने प्रकट हो जाऊँगा।"

"पद्मपाद, मैं तुम्हारी भलाई को कभी नहीं भूल सकता। तुम्हारी सहायता से मैं फिर अपनी माँ को देख पाऊँगा। क्या तुम भी मेरे साथ अवन्तीनगर तक नहीं आ सकते ? तुम्हें देखकर मेरी माँ अत्यन्त प्रसन्न हो जाएगी," पिंगल ने कहा।

पद्मपाद पिंगल की ओर वात्सल्य भरी दृष्टि दौड़ा कर बोला, "पिंगल, मैं भी तुम्हारे उपकार को कैसे भूल सकता हूँ ? तुम्हारी सहायता से ही मैं महामाय पर विजय प्राप्त कर सका। इसलिए मैं किसी न किसी दिन तुम्हारे घर अतिथि बन कर आ जाऊँगा और तुम्हारी माँ के दर्शन कर लूँगा। अभी मुझे अनेक कार्यों को निपटाना हैं। उन सबको करने के लिए मेरा यहाँ रहना आवश्यक है। परन्तु सबसे पहले फिलहाल इन सार्थवाहों को छोड़कर अकेले ही मुझे तीर्थाटन पर जाना पड़ेगा," यह कहकर पिंगल के देखते-देखते वह गायब हो गया।

पिंगल ने हसन गोरी के पास जाकर बताया कि वह अपने देश को लौट रहा है। उसकी बातें सुनकर हसन आश्चर्य में आ गया और पूछा, "पिंगल, यह तुम कैसी बातें करते हो ?

पिंगल ने अपने मन के भीतर मंत्र का पाठ किया। उस पर भल्लूककेतु प्रत्यक्ष हुआ और उसके सामने घुटने टेककर बोला, "प्रभु, क्या आज्ञा है ? आप मुझे अनेक दिनों से भूल ही गए हैं। मुझे एक बार भी याद नहीं किया !"

भल्लूककेतु का भयंकर रुप देखकर हसन गोरी डर गया। उसके शरीर में कंपकपी छा गई और जोर से चिल्लाकर वहाँ से भाग जाने को हुआ। तब पिंगल ने उसका हाथ पकड़कर रोकते हुए कहा, "हसन, तुम्हें डरने की कोई ज़रूरत नहीं है। यह भल्लूककेतु मेरा सेवक है।"

"क्या यह राक्षस तुम्हारा सेवक है ?" बड़े विस्मय सें हसन ने पूछा।

"जी हाँ !" यह कहकर पिंगल भल्लूककेतु के कन्धों पर बैठ गया और बोला, "हसन, मैं अब अपने देश को लौट रहा हूँ। भूख-प्यास से तड़पते समय तुमने मुझे बचाया, मैं तुम्हारे प्रति सदा कृतज्ञ रहूँगा। तुम्हारी इस भलाई को मैं कभी नहीं भूल सकता।" यह बताकर फिर भल्लूककेतु को आज्ञा दी, "भल्लूककेतु, मुझे अवन्तीनगर के मेरे घर पहुँचा दो।"

भल्लूककेतु ज़ोर से हुँकार करके आसमान में उड़ा; समुद्र, नदियाँ, पहाड़ और जंगल पार करके सूर्योदय तक पिंगल को अवन्तीनगर में उसके निवास के पास उतार दिया।

अपने मकान को जर्जर अवस्था में देखकर

तुम समझते हो जैसे तुम किसी पड़ोसी गाँव में जा रहे हो। जानते हो कि तुम्हारे देश और इस देश के बीच कितने हज़ार मीलों की दूरी है ? क्या इतनी दूरी की यात्रा के लिए कोई ऐसे ही निकल पड़ता है ? क्या इस बात को क्या इस तुमने सोचा है ?"

पिंगल मुस्कुराकर बोला, "हसन, तुम्हें मेरी शक्ति एवं सामर्थ्य का पता नहीं है। तुम मेरे साथ सामने दीखने वाली शिला की ओट में आ जाओगे तो तुम्हें मैं एक अद्भुत व्यक्ति के दर्शन कराऊँगा। उसको तुम्हारे सैनिक और रेगिस्तानी डाकुओं का देखना ठीक नहीं है।" यह कहकर वह समीप की एक शिला की ओट में चला गया।

पिंगल निश्चेष्ट रह गया । अपने मकान की ड्योढ़ी पर पहुँचते ही उसे सूख कर कांटा बनी उसकी माँ दिखाई दी । अपने उमड़ते हुए दुख को रोकते हुए पिंगल ने "अम्मा" कहकर अपनी माँ के साथ आलिंगन कर लिया । उसकी आँखों में आँसू उमड़ पड़े ।

माँ पल भर के लिए चकित रह गई । फिर अपने पुत्र को पहचान कर बोली, "बेटा पिंगल, तुम अभी तक जिन्दा हो ! मैं कितनी भाग्यशालिनी हूँ ! मैं तो तुम्हारे जिन्दा लौटने की आशा ही छोड़ बैठी थी !" यह कहकर रोने लगी ।

पिंगल अपनी माँ को सांत्वना देकर बोला, "माँ, अब हमें डरने की कोई बात नहीं है । अब मैं आ गया हूँ न ? मेरे दुष्ट भाई कहाँ पर हैं ?"

"बेटा, उन दोनों ने तुम्हारे साथ जो द्रोह किया, उसकी सजा भुगत रहे हैं । राजा ने दोनों को कारागार में बन्दी बनाकर डाल दिया है," माँ ने कहा ।

"तब तुम इस बुरी हालत में क्यों हो ? मैं तुम्हारे पास धन तथा जादू की थैली छोड़ गया था, वे तो सुरक्षित हैं न ?" पिंगल ने पूछा ।

माँ अपने दुख पर नियंत्रण करते हुए बोली, "बेटा, इन्हीं चीजों के लिए राजा ने उनको कारागार में डाल दिया है । जो चीज़ें तुमने मेरे आराम के लिए छोड़ी थी, उन्हीं के लिए राजा ने आज हमारी यह अवस्था कर दी है ।" यह

कहकर पिंगल के घर छोड़ने के बाद से लेकर सारा वृत्तान्त सुनाया ।

माँ की बातें सुनकर पिंगल क्रोध के मारे कांपते हुए बोला, "माँ, मैं अवन्तीनगर के राजा से प्रतिकार लूँगा । राजा का यह साहस कि मेरे परिवार को सताए ? मेरे भाइयों को बन्दी बनाये? मेरी जादू की थैली को मंगवा ले ?" यह कहकर उसने भल्लूककेतु का स्मरण किया ।

"प्रभु, क्या आज्ञा है ?" यह कहते हुए भल्लूककेतु प्रत्यक्ष हुआ ।

"भल्लूक, अवन्तीनगर के राजा ने मेरे दोनों बड़े भाइयों को कारागार में डाल दिया है । उन्हें तुरन्त यहाँ ले आओ । यही नहीं, उसके खजाने की सम्पत्ति को भी यहाँ पर लाना होगा । अद्भुत

जादू वाली थैली भी उसी के पास है । उसको भी खोजकर यहाँ पर ले आओ," पिंगल ने आदेश दिया ।

"जो आज्ञा, प्रभु !" यह कहकर भल्लूककेतु गायब हो गया । पाताल लोक से होकर राजमहल में प्रवेश किया और खजाने का सारा धन तथा जादू की थैली लेकर कारागार में पहुँचा ।

भल्लूककेतु को देखते ही पिंगल के बड़े भाई जीवदत्त और लक्षदत्त चीखकर बेहोश हो गए । भल्लूककेतु उन दोनों को कन्धे पर डालकर पिंगल के पास लौट आया और बोला, "यह जादू की थैली है । इस गठरी में राजा के खजाने का सारा धन पड़ा हुआ है । ये लीजिए, आपके बड़े भाई !" यह कहकर सबको पिंगल के आगे कर दिया ।

अपने बेहोश पुत्रों को देखते ही माँ को उनपर दया आ गई । उसने अपने बेटों के चेहरों पर पानी छिड़क कर पुकारा, "बेटे, मेरे प्यारे बेटे ! यह तुम्हारी क्या हालत हो गई है ? तुम्हारे जाने से तो मैं रो-रो कर पागल हो गई थी । परन्तु अब तुम चिन्ता मत करो । अब तुम्हारा भाई आ गया है, वह सब ठीक कर देगा ।"

इसपर जीवदत्त और लक्षदत्त ने आँखें खोलकर देखा । सामने पिंगल और अपनी माँ को पाकर मानो उनके प्राण ही सूख गये । उन्हें लगा कि अब उनका भाई उन्हें नहीं छोड़ेगा,

उनसे माँ की देखभाल न करने का बदला लेगा।

अब उन्हें अपनी करनी पर दुख होने लगा । वे दोनों पश्चाताप करते हुए बोले, "माँ, भाई पिंगल, हमें क्षमा कर दो । हमारी बुद्धि ठिकाने आ गई है । उन अन्धेरी कोठरियों में हमने अपने पापों का प्रायश्चित कर लिया है ।"

अपने भाइयों के मुँह से ये शब्द सुनकर पिंगल का दिल पिघल गया । फिर भी उनकी ओर क्रोध भरी दृष्टि दौड़ाकर बोला, "तुम दोनों से बढ़कर दुष्ट, परमनीच और द्रोही इस दुनिया में और कोई नहीं मिलेगा । मैं चाहूँ तो इस समय तुम दोनों को भल्लूककेतु के द्वारा पाताल लोक में गड़वा सकता हूँ, लेकिन अपने सहोदर भाई समझ कर इस बार तुमको क्षमा कर रहा हूँ।

यदि फिर कभी तुमने मेरे या माँ के प्रति द्रोह करने की बात सोची तो तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े करवा दूँगा ।"

"क्षमा करो, हमारे छोटे भाई ! अब हमारी बुद्धि ठिकाने लग गई है ! हमें अपने किये की सज़ा मिल गई है । हमारे मन में अब पश्चाताप की आग सुलग रही है । हमें क्षमा कर दो ।" जीवदत्त और लक्षदत्त एक स्वर में बोल उठे ।

इसके बाद पिंगल जादू वाली थैली अपनी माँ के हाथ सौंपते हुए बोला, "माँ, अब यह थैली संभाल कर रखो । ध्यान रखना कि अब कोई इसे छू भी न सके । जाओ, जल्दी खाना तैयार कर दो ।" फिर भल्लूककेतु को पुकार कर आदेश दिया, "भल्लूक, नदी के तट पर दीखने वाले उन पेड़ों के बीच तुम कल सूर्योदय तक मेरे लिए एक सुन्दर महल बनवा दो । वह महल अवन्तीनगर के राजमहल से बढ़कर कहीं अधिक शोभायमान हो, उसमें किसी बात की कमी न रह जाए । समझ गये न ?"

"जो आज्ञा, प्रभु । भल्लूक पर्वतों में वास करने वाले मेरे अनुचरों में अनेक कुशल शिल्पी हैं । पुकारने मात्र से वे सब मिनटों में यहाँ पर आ उतरेंगे । उनके दल को बुलाकर क्या मैं अभी काम आरम्भ कर दूँ ?" भल्लूककेतु ने पूछा ।

"दिन के समय तुम्हारे राक्षस-दल का यहाँ पर आ जाना ख़तरे से खाली नहीं है । तुम लोगों को देखने के बाद अवन्ती नगर का एक भी निवासी यहाँ पर रहने से डर जाएगा । सारे लोग डर के मारे यहाँ से भाग जाएंगे । सारी जनता नगर को छोड़कर भाग जाए, यह मैं पसन्द नहीं करता । इसलिए दिन में काम करना ठीक नहीं, सूर्यास्त के बाद काम आरम्भ कर दो," पिंगल ने सुझाया ।

"जो आज्ञा, प्रभु ! भल्लूक पर्वतों में जाकर मैं अपने अनुचरों को यह समाचार दूँगा और संध्या के समय मैं अपना काम आरम्भ करूँगा," यह कहकर भल्लूककेतु गायब हो गया ।

(अगले अंक में समाप्य)
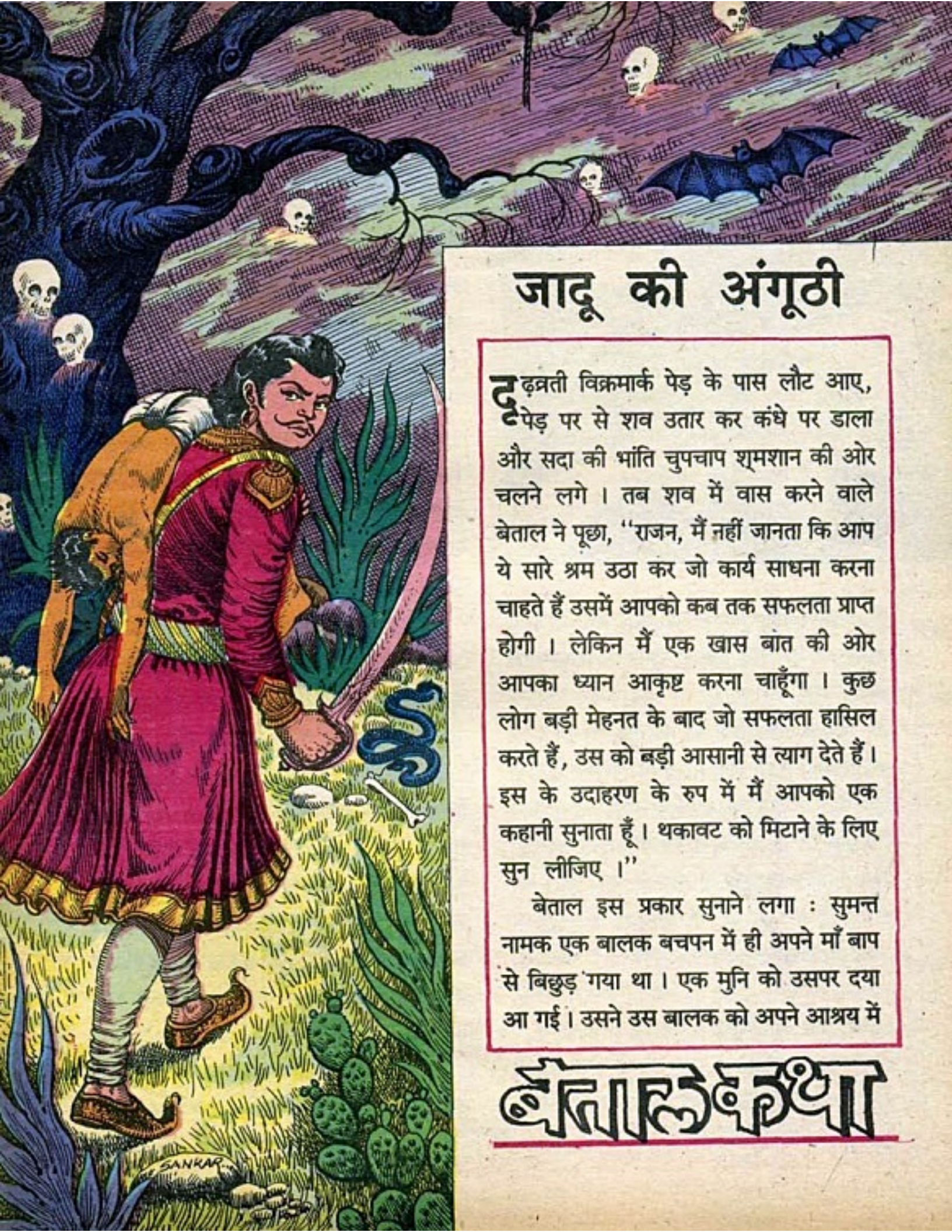
जादू की अंगूठी

दृढ़व्रती विक्रमार्क पेड़ के पास लौट आए, पेड़ पर से शव उतार कर कंधे पर डाला और सदा की भांति चुपचाप श्मशान की ओर चलने लगे। तब शव में वास करने वाले बेताल ने पूछा, "राजन, मैं नहीं जानता कि आप ये सारे श्रम उठा कर जो कार्य साधना करना चाहते हैं उसमें आपको कब तक सफलता प्राप्त होगी। लेकिन मैं एक खास बात की ओर आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहूँगा। कुछ लोग बड़ी मेहनत के बाद जो सफलता हासिल करते हैं, उस को बड़ी आसानी से त्याग देते हैं। इस के उदाहरण के रुप में मैं आपको एक कहानी सुनाता हूँ। थकावट को मिटाने के लिए सुन लीजिए।"

बेताल इस प्रकार सुनाने लगा : सुमन्त नामक एक बालक बचपन में ही अपने माँ बाप से बिछुड़ गया था। एक मुनि को उसपर दया आ गई। उसने उस बालक को अपने आश्रय में

बेतालकथा

सफर लम्बा और अनजाना था। थकावट, भूख और प्यास उसे सता रही थी। थोड़ी देर के लिए वह थकान मिटाने को एक घने पेड़ की छाया में आराम करने के बहाने आँखें मूँद कर पड़ गया। क़रीब एक घंटे बाद पक्षियों की चहचहाट से उसकी नींद टूट गई। उसने फिर चलने की तैयारी की। लेकिन थोड़ी दूर चलने के बाद वह रास्ता भटक गया। सूर्यास्त के समय वह एक जंगल में पहुँचा।

सुमन्त के सामने अब यह सवाल पैदा हुआ कि रात कहाँ पर बिताई जाए। उसने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। उसे समीप के पहाड़ पर एक उजड़ा हुआ मकान दिखाई दिया। सुमन्त उस पहाड़ की ओर चल पड़ा।

ले लिया और गुरुकुल में भर्ती कर लिया। सुमन्त ने दस वर्ष तक गुरुकुल में विद्याभ्यास किया और कई शास्त्रों में पंडित बन गया।

मुनि ने उस युवक को एक प्रमाण-पत्र देकर समझाया, "बेटा, यहाँ पर तुम्हारी शिक्षा समाप्त हो गई है। तुम इस राज्य के चारों तरफ फैले हुए किसी भी राज्य में जाओ, तुम्हें अवश्य नौकरी मिल जाएगी। लेकिन एक बात का ध्यान रहे। तुमने जो भी गुरुकुल में सीखा व जाना है, उसका सदैव पालन करना। यही मेरी दक्षिणा होगी।" इस के बाद मुनि ने अपने शिष्य को आशीर्वाद देकर भेज दिया।

सुमन्त ने रोहितपुर राज्य में जाने का निश्चय किया और उस दिशा की ओर निकल पड़ा।

पहाड़ की तलहटी में उसे कीमती वस्त्र धारण किए हुए एक युवक दिखाई दिया। वह देखने में किसी देश का युवराज लगता था। सुमन्त ने मन्दहास करके उसको प्रणाम किया।

इस के उत्तर में युवक ने अभिवादन किये बिना गंभीर चेहरा बना कर कहा— "ओह, तुम अपने भाग्य की परीक्षा लेना चाहते हो। हम दोनों में से किसको यह अवसर प्राप्त होगा, इस का निर्णय करने के लिए सिवाय खड्ग-युद्ध के और कोई उपाय नहीं है।" यों कह कर उसने कमर में लटकने वाली तलवार की मूठ पर हाथ रखा।

सुमन्त ने आश्चर्य में आकर पूछा, "आप यह क्या कहते हैं? हम दोनों के बीच खड्ग-युद्ध

होगा ! मगर क्यों ? आप तो कोई राजकुमार लगते हैं और युद्ध के लिए पूरे अस्त्र-शस्त्र के साथ तैयार हैं। मैं ठहरा एक गरीब पंडित ! मेरे हाथ में तो तलवार नहीं है ।"

"तब तो तुम आगामी अमावस्या तक रुक जाओ। इस अमावस्या की रात को मैं अपनी किस्मत का फैसला कर लूँगा ।" युवक ने कहा ।

ये बातें सुनकर सुमन्त और भी आश्चर्य में पड़ गया। उसने युवक से फिर पूछा, "आपकी बातें मेरी समझ में नहीं आ रहीं हैं। यदि आप अपने भाग्य को अजमाना चाहते हैं तो मैं बीच में नहीं पड़ूँगा। मैं तो एक यात्री हूँ। रास्ता भटक गया हूँ। मेरे शास्त्र ही केवल मेरे संग हैं। आप विश्वास कीजिए कि मैं किसी भी प्रकार से आपका बुरा नहीं चाहता हूं। केवल आज रात को विश्राम करने के लिए मैं उचित स्थान की खोज में हूँ ।"

यह जवाब सुनकर युवक शांत हो गया। उसने सुमन्त को बताया कि वह किस काम से यहाँ पर आया है। वह रोहितपुर का युवराज था। पहाड़ पर स्थित उजड़ा हुआ मकान भूत-प्रेतों का निवासस्थान था। पिछले पचास वर्षों से जो भी उस मकान में गया, वह ज़िन्दा लौट कर नहीं आया। उस मकान में एक बढ़िया पलंग था। उस पर तकिये के नीचे एक जादू की अंगूठी थी। अमावस्या के दिन जो व्यक्ति एक रात उस में बिताएगा उसे वह जादू

की अंगूठी प्राप्त होगी। उस अंगूठी को धारण करने वाला पूरे सौ साल तक ज़िन्दा रह सकता है ।

आज अमावस्या का दिन था। युवराज उस उजड़े मकान में रात बिताने के प्रयत्न में था।

"जो व्यक्ति जादू की वह अंगूठी पाना चाहता है, उसे अकेले ही पहाड़ पर चढ़ कर उस भुतहे मकान में सवेरे तक रहना होगा। तुम पहाड़ की इस तलहटी में हो, इसलिए मेरी हिम्मत बंध रही है ।" युवराज ने कहा ।

सुमन्त एक शिला पर बैठते हुए बोला, "मैं आपके लिए सवेरे तक यहीं पर रुक जाऊँगा। आप बिना किसी भय के इस मकान में घुसने का प्रयत्न कीजिए। मैं आपको यहाँ से लगातार

देखता रहूँगा। अगर आप पर कोई कष्ट आया तो मुझे पुकार लीजिए। मैं आपकी विजय की कामना करता हूँ।"

सूर्यास्त हो गया। क्रमशः सारे जंगल में अन्धकार फैलने लगा। युवराज ने पहाड़ पर चढ़ना आरम्भ किया। सुमन्त पक्षियों के कलवर और जानवरों की गर्जन सुनते हुए चुपचाप बैठा रहा। अन्धकार घना ही होता जा रहा था। राजकुमार अब तक पहुँच गया होगा, यह सोचकर सुमन्त बेपरवाह हो गया। थोड़ी देर बाद किसी के कदमों की आहट पाकर उसने सर घुमा कर देखा। युवराज पहाड़ से उतरकर चला आ रहा था।

युवराज सुमन्त के समीप आया। सुमन्त ने उस से पूछा, "क्या हुआ ?"

युवराज सर झुकाकर कांपते हुए बोला, "पहाड़ पर आधी दूर ही गया था कि एक अज्ञात भय मेरे शरीर में प्रवेश कर गया, इसलिए मैं लौट आया।"

"युवराज, डरते क्यों हैं ? भगवान पर विश्वास रखकर साहस के साथ पहाड़ पर चढ़िए।" सुमन्त ने युवराज को प्रेरित किया।

युवराज फिर पहाड़ पर चढ़ने को निकल पड़ा। वह थोड़ी दूर ही गया था कि उजड़े मकान के पीछे से सियारों की चिल्लाहटें सुनाई दीं। उसी वक्त अग्निकणों की भांति चमकते हुए जुगनु शिथिल गृह के चारों तरफ उड़ने लगे।

युवराज पुनः सुमन्त के पास लौट आया. और बोला, "मित्र, भूत-प्रेतों वाले उस शिथिल गृह में रात बिताने की मेरी हिम्मत नहीं पड़ रही

है। वहाँ पहुँचते ही मेरे रौंगटे खड़े हो जाते हैं। मैं सचमुच असमर्थ हूँ।"

सुमन्त थोड़ी देर तक सोचता रहा, फिर बोला, "युवराज, आप निराश मत होइये। अगर आप अनुमति दें तो मैं भी एक बार प्रयत्न करके देखूँ।"

"तुम्हें प्रयत्न करने से रोकने वाला मैं कौन होता हूँ।" युवराज ने शान्त स्वर में कहा।

सुमन्त पहाड़ पर चढ़ कर शिथिल गृह में पहुँचा। मकान के भीतर गहरा अन्धेरा छाया हुआ था और उसके किवाड़ खुले हुए थे। उसने ज्यों ही मकान के अन्दर कदम रखा, त्यों ही उस के दिल को कंपा देने वाले अट्टहास और चीतकार सुनाई दिये। थोड़े समय के बाद उसे ऐसा लगा कि राजकुमार की तरह वह भी वापिस लौट जाएगा। सचमुच ऐसे स्थान पर एक रात तो क्या, भयभीत आवाज़ें सुनकर ही एक कोस की दूरी पर खड़े रहना भी बहुत हिम्मत का काम है। पर वह हिम्मत हारे बिना वहाँ के पलंग पर बैठ गया।

"सौ साल जीने की इच्छा रखने वाला तुम्हारा प्रलोभन आज रात को तुम्हारी मौत का कारण बन रहा है। सावधान।" पलंग पर बैठते ही उसे यह भीषण चेतावनी सुनाई दी।

"मैं सौ साल जीने का प्रलोभन नहीं रखता पर आज रात को मरने की बात प्रारब्ध पर अधारित होगी।" सुमन्त ने आत्म-विश्वास के साथ कहा।

भूत-गृह में थोड़ी देर तक शांति छा गई। फिर अचानक अट्टहास शुरु हुआ और शरीर में

रोंगटे पैदा करने वाली कर्कश ध्वनि सुनाई दी, "क्या तुम भूत-प्रेतों से नहीं डरते ?"

"जिन्दे आदमी का मृत व्यक्तियों से डरना कैसा ? यह बात बिल्कुल असंगत है।" सुमन्त ने कहा ।

इस के बाद पलंग इधर-उधर हिलने लगा। अंगारों को फेंकने वाली जैसी गरम हवा किवाड़ों तथा खिड़कियों में से होकर मकान के अन्दर प्रवेश करने लगी। चमगीदड़ सुमन्त के सर को छूते हुए ऊपर-नीचे उड़ने लगे। पर सुमन्त उनकी परवाह किये बिना साहस पूर्वक खाट पर बैठा रहा ।

थोड़ी देर में पौ फटी ।

भूत-गृह में विकृत हंसी-ठठ्ठे व चिल्लाहटें रुक गईं। सर्वत्र सूरज की रोशनी फैल गई। सुमन्त रात का अजीब कोलाहल और अब एकदम मौन वातावरण देखकर विश्वास न कर सका। सूरज की किरणों ने उसे ढाढस बँधाया। फिर उसका ध्यान तकिये पर गया। उसने पलंग पर रखा तकिया उठा कर उस के नीचे रखी हुई अंगूठी अपने हाथ में ले ली। अँगूठी सचमुच ही बहुत आकर्षक थी। इतनी सुंदर अँगूठी और ऐसे स्थान पर ! सुमन्त जल्दी से उस मकान से बाहर आ गया ।

पहाड़ से उतर कर सुमन्त नीचे पहुँचा । युवराज एक शिला से सट कर सो रहा था। सुमन्त ने युवराज की तलवार पर थोड़ी देर के लिए दृष्टि केंद्रित की, फिर धीरे से खाँस कर निकट के पेड़ की एक डाल को ज़ोर से हिलाया । फिर भी युवराज ने आँखे नहीं खोलीं ।

सुमन्त निकट की एक शिला पर बैठ गया। अचानक पहाड़ पर से एक भयंकर ध्वनि सुनाई दी। युवराज जाग उठा। सुमन्त और युवराज दोंनों ने पहाड़ की ओर देखा । भूत-गृह अचानक ढह कर नीचे गिर गया ।

सुमन्त ने जादू की अंगूठी युवराज के हाथ में देते हुए कहा, "यही अद्भुत शक्तियोंवाली जादू की अंगूठी है ।"

"मित्र, अपनी आँखों पर विश्वास नहीं कर पा रहा हूँ। बोलो, तुम कैसा पुरस्कार चाहते हो ?" यह कह कर युवराज पल भर रुक कर

बोला, "मेरे कंठ में सुशोभित यह रत्नहार देखो। यह दस हज़ार सोने के सिक्कों बराबर के मूल्य का है। तुम इसे चाहो तो मैं प्रसन्नता से देने को तैयार हूँ।"

सुमन्त ने बड़े विनय के साथ कहा, "मैं एक पंडित हूँ। दूसरों को शिक्षा देने में और ग्रन्थों का अध्ययन करने में ही मुझे अपूर्व आनन्द प्राप्त होता है। आप कृपया मुझे धन का लोभी मत समझिये। मेरा कार्य समाप्त हो गया है। आपको भी अँगूठी मिल जाने से संतोष हो गया है। अब मुझे अपनी सीमा तक पहुँचना है। संपति के प्रति मेरे मन में कोई प्रलोभन नहीं है।"

"तब मैं तुम्हारा ऋण कैसे चुका सकता हूँ?" युवराज ने पूछा।

"उस रत्नहार को बेचने से जो धन प्राप्त होगा, उसे आप गरीबों तथा रोगियों की सहायता करने में लगा दीजिए।" यह सुझाव देकर सुमन्त ने अब रोहितपुर जाने का निश्चय छोड़ दिया। उसने किसी दूसरी दिशा में जाने की ठानी और युवराज से आदरपूर्वक आज्ञा लेकर वहाँ से चला गया।

बेताल ने यह कहानी सुना कर कहा— "राजन, भूत-प्रेतों वाले उस मकान में प्रवेश करके कोई भी प्राणों के साथ नहीं लौट पाया है। ऐसी हालत में सुमन्त कैसे अपने प्राणों के साथ बाहर निकल आया? अपूर्व शक्तियों वाली जादू की अंगूठी को वह अपने पास रख सकता था। ऐसा न करके उसने युवराज को क्यों दी? वह तो रोहितपुर के लिए घर से निकल पड़ा था, पर युवराज के साथ मैत्री होने के बाद उसने किसी दूसरे राज्य में जाने का निश्चय क्यों किया? इस सन्देह का समाधान जान कर भी न करेंगे तो आप का सर फट कर टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा।"

इस पर विक्रमार्क ने यों उत्तर दिया— "जो व्यक्ति मौत से नहीं डरता, उसकी, भूत, प्रेत और पिशाच किसी प्रकार की हानि नहीं कर सकते। और फिर सुमन्त तो शास्त्रों का पंडित था, ज्ञानी और बुद्धिमान था। इसीलिए तो उसने कहा था कि जिन्दे आदमी का मृत व्यक्तियों से

डरना कैसा ? इस के पूर्व जिन लोगों ने उस शिथिल गृह में प्रवेश किया था, वे सब भूत-प्रेतों को देख कर डर गए होंगे । इसी कारण से वे अपने प्राणों से हाथ धो बैठे होंगे। सुमन्त ने जादू की अंगूठी अपने पास नहीं रखी, इसके पीछे अनेक कारण हैं । वह प्रारब्ध पर विश्वास करता था । मनुष्य का सौ वर्ष तक ज़िन्दा रहना कोई बहुत बड़ा वरदान नहीं है । उस लंबी आयु में मनुष्य वृद्धावस्था के बोझ से, बीमारियों से अनेक प्रकार की यातनाओं का शिकार बन जाता है । बूढ़ा व्यक्ति दूसरों पर निर्भर रहता है । बुढ़ापा भी तो एक बीमारी ही है । इसके अलावा युवराज उस जादू की अंगूठी को प्राप्त करने के हठी निश्चय पर था । यदि सुमन्त ने वह अंगूठी युवराज को नहीं सौंपी होती तो वह अवश्य सुमन्त का संहार कर देता। पहाड़ पर से जब सुमन्त उतर आया था, उस वक्त युवराज गहरी नींद में सो रहा था। सुमन्त चाहता तो तलवार से उस का सर उड़ा सकता था, पर वह एक पंडित और ज्ञानी था। सुमन्त युवराज के साथ मिल कर रोहितपुर नहीं गया। इस के पीछे एक प्रबल कारण है। युवराज यह यश लूटना चाहता था कि उसने अपनी शक्ति के बल पर जादू की अंगूठी प्राप्त कर ली है। यह भय उसे सदा सताता रहेगा कि सुमन्त यह रहस्य किसी न किसी दिन अवश्य प्रकट कर सकता है । यह भय न होता तो युवराज ने सुमन्त को पंडित जानने के बाद अवश्य उसे अपना दरबारी पंडित बनाने का निमंत्रण दिया होता । लेकिन युवराज ने वहीं पर सुमन्त को रत्नहार पुरस्कार में देना चाहा। इसका अर्थ था कि वह पुरस्कार लेकर कहीं चला जाए। अब पंडित सुमन्त के लिए चाहे रोहितपुर का दरबार हो या किसी दूसरे देश का, दोनों बराबर थे। रोहितपुर देखने की इच्छा अब उसके मन में नहीं थी । इसलिए वह रोहितपुर का मार्ग छोड़ कर किसी दूसरी दिशा में चल पड़ा ।

राजा के इस प्रकार मौन भंग होते ही बेताल शव के साथ अदृष्य होकर पुनः पेड़ पर जा बैठा ।

—(कल्पित)

वरदान या शाप

इटावा में दुर्गाप्रसाद नामक एक छोटा व्यापारी था, जो फल बेचकर अपने परिवार का पेट पालता था। वह फलों के बगीचों के मालिकों से फल खरीद लेता और आस-पास के गाँवों में बेच देता।

एक दिन दुर्गाप्रसाद भवानीपुर पहुँचा। उस दिन वहाँ पर हाट लगी थी। शाम तक उसने अपने सारे फल बेच दिये और गाँव की ओर चल पड़ा। वह मन ही मन खुश था कि उसके सारे फल बिक गए थे।

दुर्गाप्रसाद निर्जन जंगल में चलता हुआ थोड़ी ही दूर पहुँचा था कि चारों तरफ अन्धेरा फैल गया। अचानक उसे लगा कि उसके सर पर रखी टोकरी भारी हो गई है।

यह विचित्र परिवर्तन देख कर पल भर के लिए वह भय कंपित हो गया, फिर हिम्मत बटोर टोकरी नीचे उतार कर देखा, पर टोकरी खाली थी।

"यह मेरा भ्रम था।" यों सोचकर दुर्गाप्रसाद ने टोकरी को फिर से अपने सर पर रख लिया और चल पड़ा। वह चार-पांच कदम ही आगे बढ़ा पाया था कि फिर टोकरी भारी हो गई। अब दुर्गाप्रसाद के मन में यह डर घर कर गया कि टोकरी में कोई पिशाच प्रवेश कर चुका है।

"दुर्गाप्रसाद क्या तुम डरते हो?" यह कंठ ध्वनि उसे सुनाई दी।

यह प्रश्न सुनते ही दुर्गाप्रसाद झूठ-मूठ की हिम्मत प्रदर्शित करते हुए बोला, "क्या मैं डरता हूँ? ऐसी कोई बात नहीं है। हाँ तुमने अपना परिचय नहीं दिया। कहाँ से बात कर रहे हो?"

"अभी थोड़ी देर पहले तुम्हारे दिल में जो शंका पैदा हुई, वह झूठ नहीं है। मैं वनदेवी हूँ। तुम्हारी कोई हानि नहीं करूँगी। मेरे मन में कई दिनों से यह इच्छा थी कि किसी मानव के द्वारा उठाई जाँऊ। वह अब तुम्हारे द्वारा पूरी हो गई।

बालमुकुन्द गुप्ता

मैं तुम्हारा उपकार करना चाहती हूँ। वह सामने वाला पीपल का पेड़ ही मेरा निवास है। वहाँ तक मुझे इसी प्रकार ढो कर ले चलो," वनदेवी ने कहा।

दुर्गाप्रसाद बड़ी मुश्किल से वनदेवी को पीपल के वृक्ष तक उठा ले गया।

"बस, अब टोकरी को नीचे उतार दो।" वनदेवी ने कहा।

दुर्गाप्रसाद ने टोकरी उतार दी। वनदेवी ने टोकरी से नीचे उतर कर पूछा, "मांगो, तुम क्या चाहते हो ?"

"मेरी कोई इच्छा नहीं है। मुझे छोड़ कर चली जाओ, बस मेरी यही कामना है।" दुर्गाप्रसाद ने हांफते हुए कहा।

"डरो मत दुर्गाप्रसाद। तुम जो चाहते हो सो मांग लो।" वनदेवी ने फिर जोर देकर कहा।

"तब तो मेरी खाली टोकरी को फिर मीठे-मीठे आम के फलों से भर दो। कल मैं किसी दूसरी हाट में ले जाकर बेच लूँगा।" दुर्गाप्रसाद ने कहा।

"बस, तुम्हारी यही छोटी सी कामना है ! अच्छी बात है। तुम ज्यों ही अपने गाँव की सीमा पर पहुँच जाओगे, त्यों ही तुम्हारी टोकरी आम के फलों से भर जाएगी।" वनदेवी ने कहा।

दुर्गाप्रसाद खीझ कर बोला, "तुम जो फल देना चाहती हो, यहीं पर दे दो। मेरे गाँव पहुँचने तक देने से क्यों कतराती हो ? इस में अवश्य दगा है।"

वनदेवी खिलखिला कर हंस पड़ी और बोली, "तुम निरे भोले लगते हो। तुम्हारा गाँव अभी यहाँ से एक कोस की दूरी पर है। वहाँ तक फलों से भरी टोकरी ढोना मुशिकल है। अच्छी बात है, जैसी तुम्हारी इच्छा। तुम्हारी खाली टोकरी मीठे आमों से भर गई है। अब ले जाओ।" यह कह कर वनदेवी गायब हो गई।

दुर्गाप्रसाद फलों की टोकरी सर पर रख कर घर पहुँचा। टोकरी में फल देख कर उस की पत्नी विशालाक्षी ने पूछा, "क्या हाट में आज फल नहीं बिके ? हाय राम ! कब तक हमें ये दिन देखने पड़ेंगे ?"

दुर्गाप्रसाद ने उसे सारा वृतान्त सुनाया। विशालाक्षी अपने क्रोध पर काबू रखते हुए बोली, "उफ़ ! वनदेवी ने तुम से मुँह मांगा वर देने का वचन देने को कहा, तो तुमने सिर्फ टोकरी भर फल मांग लिये। सोना मांग लेते तो हमारी दरिद्रता दूर हो जाती। तुम्हारे दिमाग में गोबर भरा है। मैं होती तो तुरन्त सोना या पैसा मांगती।"

इसके बाद विशालाक्षी ने टोकरी से एक फल निकाला, उसे काट कर एक टुकड़ा खा लिया। तब वह आश्चर्य में आ कर बोली, "मैंने आज तक ऐसा मीठा आम नहीं खाया है। तुम भी चखकर देख लो। लोग एक फल का दाम दस रुपये भी देकर खरीद लेंगे।"

दूसरे दिन दुर्गाप्रसाद संबलपुर की हाट में गया। ग्राहकों को एक आम का दाम दस रुपये बताने लगा। इसपर लोग हँस पड़े। पर एक अमीर आदमी ने एक फल चख कर देखा और उसने एक साथ दस आम खरीदे। इसे देख अन्य ग्राहकों ने चन्द मिनटों में सारे फल खरीद डाले। दुर्गाप्रसाद को उस दिन दस गुना फायदा हुआ। वह खुशी-खुशी अपने घर पहुँचा।

दूसरे दिन दुर्गाप्रसाद आम के बगीचे के एक मालिक के यहाँ से फल खरीद कर संबलपुर चला गया। लेकिन उस दिन किसी ने भी उसके यहाँ से फल नहीं खरीदे। सब लोगों ने उससे यही बात कही कि कल तुम जैसे फल लाए थे, ऐसे ही फल लाकर दो। इसपर वह चिन्ता में पड़ गया। उसने वनदेवी से मिलने का निश्चय किया।

संध्या के समय तक दुर्गाप्रसाद उस पीपल के पेड़ के पास पहुँचा, जहाँ पर उसे वनदेवी दिखाई दी थी, और उच्च स्वर में पुकार उठा, "हे वनदेवी। तुमने मेरे हित की बात कही, पर वह मेरे लिए अहित बन बैठी है।"

वनदेवी ने प्रत्यक्ष होकर पूछा, "बताओ, क्या हुआ ?" दुर्गाप्रसाद ने सारी कहानी सुनाई। तब वनदेवी ने सहानुभूति दिखाकर कहा, "ओह, ऐसी बात है। तुम कोई दूसरा वर मांग लो, दे दूँगी।"

दुर्गाप्रसाद को अपनी पत्नी की बात याद आई। "मुझे एक मन वजन का सोना चाहिए,"

दुर्गाप्रसाद ने कहा ।

"तथास्तु ! दे दिया ! तुम सावधानी से इसकी रक्षा करो ।" यह कहकर वनदेवी अदृश्य हो गई ।

दुर्गाप्रसाद सोने से भरी टोकरी सर पर रख कर घर की ओर चल पड़ा । रास्ते में वीरभद्र नामक मशहूर डाकू अचानक आ धमका, उसके रास्ते को रोककर गरज उठा, "तुम चुपचाप फलों की टोकरी नीचे रख कर यहाँ से भाग जाओ ।"

दुर्गाप्रसाद ने उसका सामना करने के लिए तैयार होकर कहा, "भले ही मेरी जान चली जाए, मैं टोकरी तुम्हारे हाथ नहीं सौंपूगा ।"

डाकू अचरज में पड़ गया । वह सोचने लगा, यह भी कैसा मूर्ख है, जो टोकरी भर फलों के वास्ते अपनी जान देने पर तुल गया है । फिर दूसरे ही क्षण उसने अपनी पोशाक के भीतर से छुरी निकाली । दोनों जूझ पड़े ।

डाकू वीरभद्र बड़ा ही बलवान था । वास्तव में वह दुर्गाप्रसाद को मार डालना नहीं चाहता था । उसे डराने के लिए वीरभद्र ने धीरे से उसके कंधे में छुरी भौंक दी । दुर्गाप्रसाद चीख कर बोला, "अरे दुष्ट वीरभद्र ! तुम इतना सारा सोना लूट कर सुखी न रहोगे ।" यह कहकर वह वहाँ से भाग गया ।

वीरभद्र उस प्रदेश में एक नामी डाकू था । यह बात राजा पहले से ही जानते थे । उन्होंने यह ढिंढोरा पिटवाया था कि जो आदमी वीरभद्र को पकड़वा देगा या उसकी लाश ला देगा, उसको एक लाख रुपये का पुरस्कार दिया जाएगा ।

दुर्गाप्रसाद ने अपने घाव पर पट्टी बँधवा ली, दूसरे दिन पीपल के पास पहुँच कर वनदेवी को सारा हाल सुनाया ।

वनदेवी क्रोध में आकर बोली, "तुम बड़े ही बदकिस्मत हो । वरना मैंने जो-जो चीज़े तुम्हारे हित की कामना से दीं, उन से तुम्हारा अहित नहीं होता । अब तुम जिंदा रहते हुए इस पेड़ के पास मत आओ ।"

दुर्गाप्रसाद भी नाराज़ होकर बोला, "देवी जी, जिस दिन तुम मेरी टोकरी पर सवार हुई

थीं, उसी दिन से मेरी मुसीबतें भी शुरु हो गई हैं। अब तो थोड़ा बहुत धन न दोगी तो मैं चुप न रहूँगा ।"

ये बातें सुनकर वनदेवी क्रोध में आ गई और बोली, "छीः तुम मुझे डराना चाहते हो। तुम अपना बदनसीब चेहरा मुझे मत दिखाओ। आज जो आदमी तुम्हारा यह बदनसीब चेहरा देखेगा, वह खून उगल कर मर जाएगा। अब तुम चले जाओ।" यह कहकर वनदेवी अदृश्य हो गई ।

दुर्गाप्रसाद उदास हो कर घर की ओर लौट पड़ा। वह सोचने लगा, "आज मेरे सामने जो आदमी निकल आएगा, उसकी मौत निश्चित है। चाहे वह कोई भी हो, उसी के गाँव का होगा। हो सकता है कि मेरी पत्नी ही मेरे सामने आ जाए । अब क्या किया जाए ।"

इस चिंता के मारे वह परेशान हो उठा। उसके सामने ऐसी समस्या आ गई थी जिसका समाधान उसके पास न था। बड़ी कशमकश में फंसा हुआ वह सर झुका कर चला जा रहा था, तभी पेड़ की ओट में से खिल-खिला कर हँसने की ध्वनि सुनाई दी। दुर्गाप्रसाद ने सर उठा कर उस ओर देखा। इस बीच डाकू पेड़ की आड़ में से बाहर निकला और पूछा, "दुर्गाप्रसाद। क्या आज भी तुम एक मन सोना लिए आ रहे हो ?" यह कहकर वीरभद्र ने दुर्गाप्रसाद की ओर देखा । फिर क्या था, उसी पल वह चीखकर खून उगलते हुए मर गया ।

उसे देखते ही दुर्गाप्रसाद को राजा का ढिंढोरा याद आ गया। उसने डाकू की लाश को उठा कर अपने कंधे पर डाल लिया और अपने गाँव पहुँच कर गाँववालों से कहा कि उसने जान दाव पर रखकर डाकू के साथ लड़ कर उसे मार डाला है ।

इस के बाद एक सप्ताह के अन्दर राजा ने दुर्गाप्रसाद को राजधानी में बुलवा भेजा और उसे एक लाख रुपये का पुरस्कार दिया ।

वनदेवी ने क्रोध में आकर दुर्गाप्रसाद को जो शाप दिया था, वह उसके लिए वरदान बन गया। इस पर दुर्गाप्रसाद बहुत खुश हो उठा।

कर्म का फल

ब्रह्मदत्त काशी राज्य पर शासन करते थे। उन दिनों में बोधिसत्व ने एक वानर के रुप में जन्म लिया। उस वानर का नाम नन्दीय था। नन्दीय का एक छोटा भाई था। वे दोनों हिमालय में अस्सी हज़ार वानरों के दल के नेता थे। नन्दीय की अंधी माता की देखभाल की जिम्मेदारी उस पर ही थी।

नन्दीय और उसका छोटा भाई प्रतिदिन फलों के बागों से मीठे और रसीले फल तोड़ कर लाते और उन्हें अपने दल के सेवकों के द्वारा अपनी माँ के पास भेजा करते थे।

एक दिन नन्दीय अपनी माँ को देखने आ पहुँचा। उसे देखकर नन्दीय अचरच में आ गया और पूछा, "माँ, तुम कितनी कमज़ोर हो गई हो? हम रोज तुम्हारे पास अच्छे-अच्छे फल भेजते हैं। क्या तुम उन्हें नहीं खातीं? तुम्हारी सेहत का ध्यान रखना हमारे लिए और सब कामों से बढ़कर है।"

"नहीं बेटा, मेरे पास एक भी फल नहीं पहुँचा। अगर फल मिल जाते तो मैं यों सूखकर कांटा क्यों बन जाती? मैं जानती हूँ कि तुम अपनी माँ के लिए जान भी दे सकते हो फिर यह तो फलों की बात है।" माँ ने कहा।

नन्दीय ने सोचा-विचारा। सच्ची बात उसकी समझ में आ गई। उसी वक्त वह हिमालय पहुँचा। अपने छोटे भाई को सारा हाल सुनाकर कहा, "भैया, मैं घर पर रहकर माँ की देखभाल करूँगा। तुम यहीं पर रहकर इस दल का नेतृत्व करो।"

"भैया मैं भी तुम्हारे साथ घर पर रहकर माँ की देखभाल करूँगा।" छोटे भाई ने कहा।

इस प्रकार दोनों एकमत होकर घर पर पहुँचे। अपनी माँ के वास्ते एक पीपल पर अच्छा निवास बनाकर आँख की पुतली की

भांति उसकी देखभाल करने लगे ।

उन्हीं दिनों में एक ब्राह्मण तक्षशिला नगर में एक प्रसिद्ध गुरु के यहाँ विद्याभ्यास कर रहा था। विद्या के समाप्त होने के बाद उसने अपने आचार्य से घर लौटने की अनुमति मांगी । उन्होंने शिष्य को समझाया, "बेटा, तुमने अपनी शिक्षा पूरी कर ली है। यह मेरे लिए प्रसन्नता की बात है। तुम उद्दण्ड प्रकृति के हो। जल्दबाजी में आकर कभी कोई अनुचित काम न करना। बाद में पछताने पर भी कोई लाभ न होगा। यह मेरा उपदेश है।" यह कहकर उसको आशीर्वाद दिया ।

ब्राह्मण युवक अपने आचार्य से अनुमति लेकर काशी नगर पहुँचा। विवाह करके गृहस्थ बन गया। उसके दिमाग में पेट भरने का कोई उपाय नहीं सूझा। इसलिए धनुष-वाण धारण कर बहेलिये का पेशा अपना लिया । वह जानवरों और पक्षियों का शिकार करके उनका मांस बेचकर उस धन से अपने परिवार का पालन-पोषण करने लगा । ब्राह्मण के लिए शिकार पाप के समान है, ये जानते हुए भी उसने यह पेशा अपनाया। वह भी क्या करता! गृहस्थी चलाने की मज़बूरी ने उसे लाचार कर दिया ।

एक दिन सारा जंगल छानने पर भी उसे कोई जानवर हाथ न लगा। निराश होकर घर लौटते हुए उसने एक पेड़ की ओर देखा। उस समय

नंदीय और उसका छोटा भाई अपनी माँ को फल खिला कर उसके पीछे बैठे हुए थे। उन लोगों ने बहेलिये को देखा ।

बहेलिये ने सोचा कि खाली हाथ घर कैसे लौटे! यों विचार कर उसने बूढ़ी वानर की ओर तीर का निशान लगाया । इसे नन्दीय ने देख लिया। तुरन्त उसने अपने छोटे भाई से कहा, "लो देखो। बहेलिये ने हमारी माँ की ओर तीर का निशाना लगाया है। मैं उसके प्राण बचाने के लिए तीर के सामने आ जाऊँगा। मेरे मरने के बाद तुम्हें माँ का पालन-पोषण करना होगा।" यह कहकर वह जल्दी-जल्दी पेड़ से उतर कर नीचे आ गया ।

उसने बहेलिये से कहा, "भाई, तुम मेरी माँ

को मत मारो। वह बूढ़ी है। उस की जगह तुम मुझे मार डालो।"

इसपर कठोर हृदयवाले बहेलिये ने "अच्छी बात है" कह कर नन्दीय पर बाण चलाया।

पर वह अपने वचन पर टिका नहीं।

नन्दीय के मरते ही उसने वृद्ध वानर पर अपने बाण का निशाना लगाया। उसे देखकर छोटा वानर पेड़ से उतर आया और उसने भी वही बात दोहराई जो नन्दीय ने कही थी। बहेलिये ने उसकी बात मान ली और निर्दयतापूर्वक छोटे भाई को भी मार डाला।

बहेलिये ने सोचा, मेरे और मेरे परिवार के लिए ये दोनों बन्दर पर्याप्त हैं। लेकिन दूसरे ही पल में उस का दिल बदल गया। उसने निर्दय होकर वृद्ध वानर पर भी बाण चला कर उस को मार डाला।

इस के बाद वह उन तीनों बन्दरों की लाशों को अपने कन्धे पर की लाठी में लटका कर घर की ओर चल दिया। गाँव की सीमा पर पहुँचते ही उसे यह ख़बर मिली कि उस का घर जल गया है और उसकी पत्नी और बच्चे घर के अन्दर फंस गये हैं।

यह ख़बर पाकर वह छाती पीटता हुआ घर की ओर दौड़ पड़ा। वहाँ पहुँच कर बड़ी हिम्मत करके वह घर के अन्दर घुसा, पर वह जहाँ पर खड़ा था वहाँ की ज़मीन अचानक फट गई और वह अन्दर धंसने लगा। इसपर पाताल में जाते हुए उसने अपने आचार्य के उपदेश का स्मरण किया, "मेरे आचार्य ने उसी दिन बताया था कि क्रूर कर्म नहीं करना चाहिए। इसके बाद पछताने पर भी कोई फायदा नहीं है। मैंने जो पाप किये, उनका प्रायश्चित कर रहा हूँ। मैंने व्यर्थ में ही निरपराध वानरों को सताया। यदि मैं उन्हें न मारता तो मेरी तो कोई हानि नहीं होती और उन बिचारों को भी अपनी जान से हाथ न धोना पड़ता।" यों सोचते हुए वह नरकलोक में चला गया। नरकलोक में उसने बहुत कष्ट सहे। उसके बुरे कर्मों का फल उसके परिवार को भी मिला। बुरे कर्म करने वाले का अन्त ऐसा ही होता है।
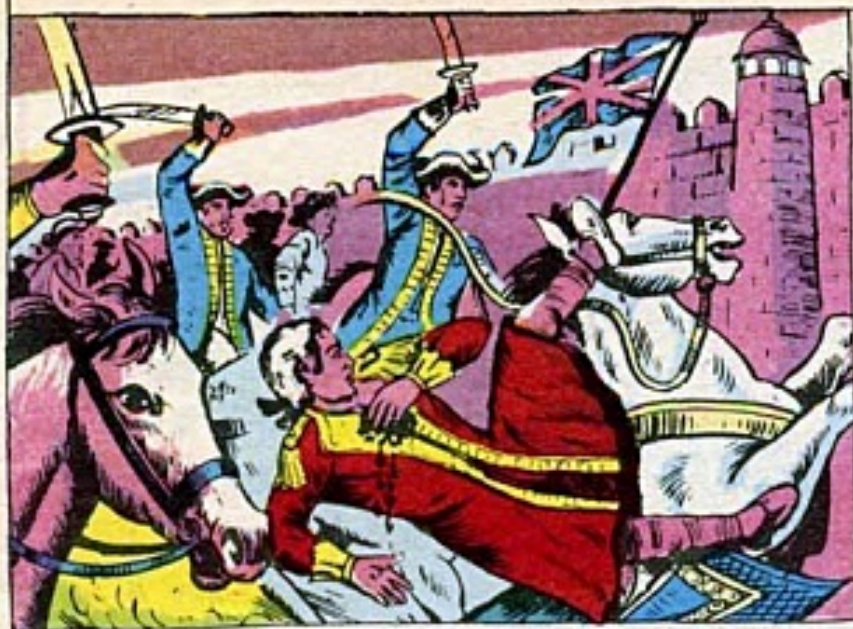
अधिकार की बदली

ब्रिटिश फौज ने दिल्ली पर क़ब्जा कर लिया, इस कारण सिपाही-विद्रोह अंतिम चरण पर पहुँचा। फिर भी ब्रिटिश सेनाओं के द्वारा दिल्ली को घेरने के चन्द घंटों के अन्दर जॉन निकल्सन नामक ब्रिटिशसेनापति सिपाहियों की गोलियों का शिकार होकर मर गया।

विद्रोही सिपाहियों ने अंतिम मुगल शासक बहादुर शाह को अपने राजा के रुप में स्वीकार किया था, अब वह भी असहाय बन गया। बहादुरशाह ने अपने पूर्वज हुमायूँ की समाधि के समीप में दुष्ट मेजर हडसन की अधीनता को स्वीकार कर लिया।

समाधि के पीछे छिपे बहादुर शाह के दोनों पुत्रों की मेजर हडसन ने खबर ली, उन्हें बन्दी बनाकर नंगा करवा दिया और भयभीत जनता के सामने निर्दयतापूर्वक गोली चला कर स्वयं मार डाला।

इस के बाद बहादुर शाह को रंगून भेजा गया, वहीं पर सन १८६२ में कैदी के रुप में ही उन्होंने अपने प्राण त्याग दिये। उनके साथ मुग़ल साम्राज्य का अन्त हुआ। उनके जो दो और बेटे बचे हुए थे, वे गरीबी से जिन्दगी भर तड़पते रहे।

सिपाही विद्रोह के असफल होने के बाद कम्पनी के सैनिकों ने भारतीय सिपाहियों के साथ बदला लेने के ख्याल से उनको सताना शुरु किया। भोले-भाले ग्रामीणों को मार कर पेड़ों की डालों से लटकवा दिया और असंख्य गाँवों को जला डाला।

भारत में कम्पनी के शासन के सम्बन्ध में इंगलैण्ड में कड़ी आलोचना हुई। ब्रिटिश सरकार ने यह निर्णय लिया कि भारत देश का शासन महारानी विक्टोरिया को सौंप दिया जाए। उन्हें 'कैसर-ए-हिन्द' की उपाधि दी गई।

कम्पनी द्वारा नियुक्त गवर्नर जनरल अब वाइसराय (रानी का प्रतिनिधि) कहलाने लगा। सन १८५८ में नवम्बर की पहली तारीख को इलाहाबाद में समारोह का आयोजन करके वाइसराय कैनिंग ने अधिकार की बदली की घोषणा की।

इसके बाद शासन सम्बन्धी मामलों में अनेक परिवर्तन किये गये। कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में उच्च न्यायालय स्थापित किये गये। शिक्षा को प्रमुख स्थान दिया गया। उसके प्रसार के लिए विभिन्न प्रान्तों में शिक्षा-विभाग खोले गये।

सन १८८० में लार्ड रिपन वाइसराय बन कर भारत में आये। वे स्वभाव से उत्तम प्रकृति के थे और आदर्श विचारों वाले सुधारक थे। उनके शासन काल में ही क्षेत्रीय परिषद तथा नगर निगम व पालिकाएँ स्थापित हुई। शासन सम्बन्धी कार्यों में भारतवासियों को छोटे-मोटे अधिकार दिये गये।

इस के पूर्व अपराधी अंगरेज नागरिक की सुनवाई लेने का अधिकार भारतीय न्यायाधिपतियों को नहीं था। यह पक्षपात पूर्ण स्थिति लार्ड रिपन को पसन्द नहीं आई। उन्होंने ब्रिटिश तथा भारतीय न्यायाधीशों को समान अधिकार देने का निश्चय किया। यह निर्णय भारत में स्थित अंगरेजों के क्रोध का कारण बना।

इस से हताश होकर लार्ड रिपन अपने पद से त्याग पत्र देकर इंग्लैण्ड के लिए रवाना हो गए। उनकी ईमानदारी और मैत्री भाव से प्रभावित भारतवासियों ने उन्हें अभूतपूर्व विदाई दी। इसके बाद भारतवासी एक राष्ट्रीय संस्था की स्थापना की आवश्यकता का अनुभव करने लगे।

सन १८८५ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई। कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन कलकत्ता के निवासी प्रसिद्ध वकील डबल्यू. सी. बनर्जी की अध्यक्षता में बम्बई में हुआ। अपनी सेवा से अवकाश प्राप्त ब्रिटिश अधिकारी आलन आकटाविन ह्यूम ने राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना में बड़ी प्रेरणा दी।

नानीपुर

प्राचीन काल में अनंग राज्य पर महाराजा चक्रधर राज्य करते थे। उनके निवास वाला राजमहल सात पीढ़ियों पूर्व निर्मित हुआ था। पर तब से एक बार भी उस महल की मरम्मत नहीं हुई थी।

क्रमशः वह राजमहल टूट-फूट गया और देखने में बहुत ही भद्दा लगने लगा। महाराजा ने यह सोच कर उसकी मरम्मत करवाने में लापरवाही दिखाई कि इतनी पीढ़ियों के बाद उसकी मरम्मत कराने में काफी व्यय होगा।

पर धीरे-धीरे यह समस्या चक्रधर के लिए घृणा का कारण बन गई। अब एक मिनट भी उस महल में रहना उनके लिए असह्य हो गया। साथ ही उनके मन में यह इच्छा पैदा हुई कि कहीं मन को प्रसन्नता पहुँचाने वाला स्थान देख कर अपने निवास के लिए घर बनवा ले।

इस संकल्प के बाद महाराजा पल भर भी उस महल में नहीं रहे। वे उसी समय अपने परिवार को साथ लेकर राजमहल से निकल पड़े। चलते-चलते आखिर एक नदी के किनारे पहुँचे।

नदी के किनारे पर उन्हें जो आत्मसन्तोष मिला, वह वर्णन के बाहर की बात थी। चारों तरफ हरियाली थी। ऊँचे-ऊँचे पेड़ों से छूती हुई शीतल हवा सोते हुए अंगों को जगाती सी प्रतीत होती थी। पक्षियों ने जैसे हवा का संग देने को एक अनोखा संगीत उत्पन्न किया हो! पास ही बहती हुई कल-कल नदी लगातार बहते हुए समय की याद दिलाती थी। वहाँ पर पहुँचते ही उनके दिल व शरीर में नवजीवन का संचार होने लगा। इसी कारण से राजा ने नदी के तट पर एक महल बनवाने का संकल्प किया और उस स्थान के मालिक का पता लगाने का आदेश दिया।

वहीं पर घनी झाड़ियों के बीच एक घर उन्हें दिखाई पड़ा। तब सबने वहाँ पर जाकर देखा।

पच्चीस वर्ष पूर्व चन्दामामा में प्रकाशित कहानी

वह एक छोटी सी कुटी थी ।

उस कुटी के भीतर नब्बेसाल की एक बूढ़ी अकेली बैठी हुई थी । जब उसे यह मालूम हुआ कि उसकी कुटी के पास स्वयं राजा और उनका परिवार आया हुआ है, तब वह बहुत प्रसन्न हुई । उसने उचित रुप से उनका सत्कार किया और पूछा, "महानुभाव, आप किस कारण से यहाँ पधारे हैं ?"

इस पर मंत्री ने कहा, "नानीजी, हमारे राजा को यह स्थान बहुत ही पसन्द आ गया है । राजमहल का निर्माण करने के लिए यहाँ पर विशाल प्रदेश की आवश्यकता है । इसलिए उस प्रदेश में पड़ने वाली तुम्हारी कुटी को हटवा देना पड़ेगा ।"

इस पर बूढ़ी बोली, "अगर महाराजा महल बनवाना चाहते हैं तो भला मैं कैसे मना कर सकती हूँ । इससे बढ़कर मेरे लिए सन्तोष की और क्या बात हो सकती है । लेकिन सात पीढ़ियों पूर्व मेरे पूर्वजों ने यह कुटी बनवाई थी । अब मैं बूढ़ी और शिथिल हो गई हूँ, साथ ही गरीबी की वजह से मैं एक कौड़ी भी खर्च करके इसकी मरम्मत करवाने में असमर्थ हूँ । फिर भी मैं इस कुटी को छोड़ कर और कहीं नहीं जाना चाहती हूँ । कभी अगर किस्मत ने साथ दिया तो इस की मरम्मत करवा लूँगी, वरना नहीं । पर मैं इस स्थान को छोड़ कर किसी भी हालत में और कहीं नहीं जा सकती ।"

इस पर मंत्री ने बूढ़ी से कहा, "तुम्हारा कहना उचित है । लेकिन अपने पुरखों की याद करके यहाँ से हटना नहीं चाहती तो ठीक न होगा । तुम यह छोटी सी जगह छोड़ दो, तुम्हें हमारे राज्य में जहाँ चाहोगी, वहाँ पर इससे दस गुना विशाल स्थान महाराजा दे देंगे । यदि तुम अपनी कुटी के लिए धन चाहती हो तो तुम्हें मुँह माँगा धन दिया जाएगा । मैं अभी मंगवा कर दे दूँगा ।"

इस पर बूढ़ी ने निर्भयतापूर्वक उत्तर दिया, "बेटा, मुझे बड़े-बड़े स्थान और धन के ढेरों की ज़रूरत नहीं है । असली बात यह है कि मैं अपनी कुटी को छोड़ कर कहीं जाना नहीं चाहती । महाराजा अगर महल बनवाना चाहते हैं तो उनसे कह दो कि वे मेरी कुटी की आशा

छोड़ कर इस विशाल मैदान में और कहीं अपना महल बनवा लें ।"

बूढ़ी का उत्तर सुनकर राजा का परिवार क्रोध में आ गया । मंत्री ने गरज कर कहा, "तुम्हें शायद मालूम नहीं कि तुम किस के साथ बात कर रही हो । तुम्हारी हैसियत ही क्या है ? इस झोंपड़ी की कीमत ही क्या है ? इसको उखाड़ कर फेंक दो ।"

हालत को नाजुक देखकर राजा ने सबको शान्त किया, क्योंकि बूढ़ी की बातें ध्यान से सुनकर अकेले राजा ने ही उसके मर्म को समझा । बूढ़ी की बातों ने सचमुच राजा के दिल में बड़ी हलचल मचा दी ।

बूढ़ी नानी के दिल में अपने जन्मस्थान के प्रति जो ममता है और अपने पूर्वजों के प्रति जो श्रद्धा और भक्ति है, उसे देख वे विस्मय में आ गए । उसकी बातें सुनने के बाद राजा को लगा कि उन्होंने जो संकल्प किया है, वह कैसे गलत ढंग का था । वे यह सोच कर सोच में पड़ गये, "प्राज्ञ तथा महाराजा बने मेरे अन्दर इस बूढ़ी के बराबर ज्ञान नहीं रहा ।"

इस के बाद राजा ने अपने मंत्री तथा परिवार को अपने समीप बुलाकर कहा, "इस बूढ़ी ने मुझे एक अच्छा सबक़ सिखाया है । मुझे अपने महल की मरम्मत करवाकर अपने पूर्वजों की प्रतिष्ठा की रक्षा करनी थी । पर मैं अपने कर्त्तव्य को भूल गया । सौभाग्य से हम लोग यहाँ पर आ गये । इस नानी ने मुझे अपने कर्त्तव्य का
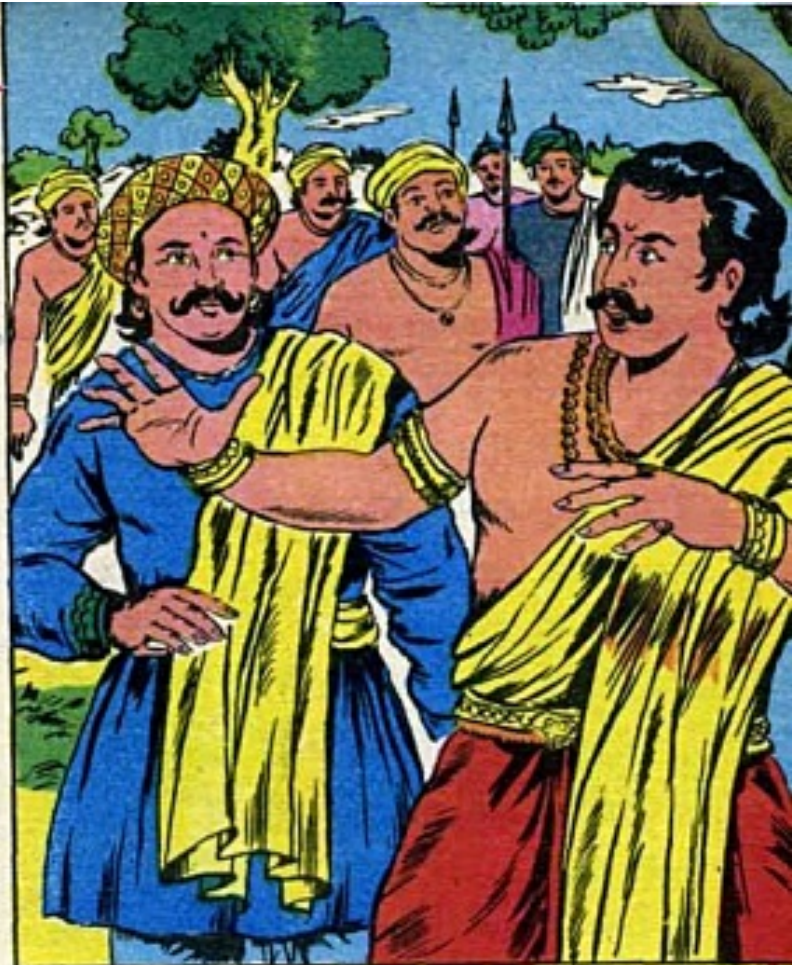
स्मरण दिलाया है ।"

"मैं अब राजमहल में प्रवेश नहीं करूँगा । मैं यहीं पर इन पेड़ों के नीचे वास करूँगा । यहीं रह कर मैं अपने राजमहल की मरम्मत करवा लूँगा । जब तक मैं अपने पूर्वजों के द्वारा निर्माण कराये गये महल को शोभायमान नहीं बनाऊँगा, तब तक मैं उस में प्रवेश नहीं करूँगा ।" इस प्रकार राजा ने अपना निश्चय प्रकट किया ।

राजा की बातों का मर्म चन्द लोग ही समझ पाये । बाकी लोगों ने राजा को पागल समझा । उस दिन से राजा ने पेड़ों के नीचे अपना निवास बना लिया ।

राजा ने जब वहाँ पर निवास किया तो नगर की सारी प्रजा वहाँ पर आ पहुँची । सब ने यही

अनुभव किया कि यही प्रदेश निवास के लिए ज्यादा अच्छा होगा। फिर क्या, राजा के साथ बाकी सब लोगों ने पेड़ों के नीचे छोटे-छोटे कुटीर बना कर उसीको अपना निवास बनाया।

चन्द दिनों में वह प्रदेश एक सुन्दर नगर के रुप में बदल गया। मगर वह नगर के लक्षणों से भरा हुआ शहर न था, बल्कि देहाती लक्षणों वाला शहर था।

यहाँ पर कुछ घर निर्मित हुए। राजमहल बना, अनेक नये निर्माण होने के उपरान्त भी सात पीढ़ियों से चली आने वाली नानी की कुटी को राजा ने नहीं हटवाया और न किसी को हटाने दिया।

साथ ही राजा ने अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए नानी की कुटी की मरम्मत करवाई। यही नहीं, बल्कि उन पेड़ों के नीचे निर्मित नगर का नाम उस बूढ़ी के नाम पर "नानीपुर" रखा।

इसके बाद महाराजा चक्रधर ने बड़ी लगन के साथ अनंग राज्य के अपने पूर्वजों के राजमहल की मरम्मत करवाई। अब वह महल अत्यन्त शोभायमान दीखने लगा।

महाराजा ने ज़िन्दगी भर अनंग राज्य के अपने पूर्वजों के महल को राजकाज का केंद्र बनाये रखा, लेकिन "नानीपुर" को ही अपना निवास बनाया।

नानी पुर में रहने वाले सभी लोग प्रेम और एक दूसरे के प्रति सहायता का वातावरण बनाये रखते थे। नानी ने इससे भी अच्छी और गुणवान बातें उनको सिखाईं। जो लोग बुरी आदतों में पड़ गए थे, वे सुधरने लगे। जो लोग अपनी पुरानी परम्पराओं को भूल गए थे और नये ढ़गों, तौर तरीकों को ही उच्च स्थान देते थे, प्यारी नानी ने और नानीपुर ने ऐसे लोगों को अपने वास्तविक स्थान पर पहुँचा दिया। सभी का हृदय फूल सा कोमल हो गया। ऐसा लगने लगा मानों साक्षात देवी-देवताओं का निवास स्थान हो। नयी पीढ़ी के बच्चों ने भी वही ढंग अपनाये। सचमुच नानी ने लोगों को जीना सिखला दिया। राजा तथा प्रजा सब हँसी-खुशी रहने लगे।

कनकदास की समझदारी

एक बार सीतापुर में एक मांत्रिक आया। वह डींग हाँकने लगा कि वह अपनी मंत्र-विद्या के बल से सब प्रकार के रहस्यों का पता लगा सकता है। कई लोग अपने-अपने स्वार्थ को लेकर उसके पास पहुँचे। मांत्रिक ने सबको चालाकी से विश्वास दिला कर खूब धन कमाया। उसी गाँव के एक निवासी कनकदास को मांत्रिक की शक्ति पर विश्वास नहीं था।

सीतापुर में लक्ष्मीपति नामक एक धनवान सेठ रहता था। उसने सुन रखा था कि कनकदास मांत्रिक पर विश्वास नहीं करता। एक दिन वह कनकदास के घर पहुँच कर बोला, "मांत्रिक ने मेरा बहुत उपकार किया है। इसके बदले में मैं उसको सौ सिक्के दूँगा। यदि तुम यह साबित कर दो कि मांत्रिक ढोंगी है, दगाबाज़ है, तो मैं उसे सौ सिक्के नहीं दूँगा।

कनकदास सोच में पड़ गया। लक्ष्मीपति के पूछने पर वह बोला, "सारा गाँव मांत्रिक पर विश्वास करता है। हर एक उसे बड़ी-बड़ी रकमें भेंट करता है। ऐसे में मैं उसके धोखे को कैसे प्रकट करूँ।"

लक्ष्मीपति ने क्षण भर रुक कर इस तरह अजीब सा चेहरा बनाया, जैसे उसे कोई उपाय सूझ गया हो, और तपाक से बोला— "सुनो, तुम एक काम करो। दस दिन पहले तुमने मुझसे कहा था कि अगली पैदावार तक तुम मेरा ऋण चुका दोगे क्योंकि तुम्हारे सौ सिक्के खो गये थे। अब तुम मांत्रिक से यह पूछो कि तुम्हारा धन कैसे खो गया और किसने चुराया है। अगर वह बता सके तो धन लाकर मुझे दे दो और मैं मांत्रिक को दे दूँगा।"

"अगर मांत्रिक खोये हुए धन का कारण और पता नहीं बता सका तो?" कनकदास ने धनी सेठ से पूछा।

"ऐसा होने पर मैं अपने सौ सिक्के छोड़ दूँगा। जब यह साबित हो जाएगा कि मांत्रिक

महेशचन्द्र दुबे

ढोंगी है तब उसे उपहार देने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। साथ ही तुम्हारा ऋण चुक जायेगा," सेठ लक्ष्मीपति ने उपाय बताया।

लक्ष्मीपति की चालाकी पर कनकदास अचरज में पड़ गया। सेठ बड़ी चालाकी से अपना ऋण वसूल करना चाहता था।

"अच्छी बात, चलो," कनकदास ने कहा।

इसके बाद वे दोनों मांत्रिक के पास पहुँचे। वहाँ बहुत से लोग थे। मांत्रिक काला अंगरखा पहने हुए हिरण की खाल पर बैठा हुआ था। उसके सामने सजी हुई रंगोली के बीच दो हाँडियाँ और एक कपाल रखे थे। मांत्रिक की आँखे बंद थी और वह दांत पीसते हुए मंत्रोच्चार कर रहा था।

कनकदास ने झुक कर प्रणाम किया और कहा, "महात्मा जी, मेरा एक छोटा सा निवेदन है। मेरी कामना की पूर्ति करने पर भी मैं बदले में कुछ देने में असमर्थ हूँ क्योंकि मैं गरीब हूँ।"

मांत्रिक ने आँखें खोलकर कहा, "वत्स। तुम जैसे भले लोग प्रसन्नता पूर्वक जो कुछ भेंट करते हैं उसी को देवी स्वीकार करती है। देवीजी का आदेश है कि तुम जैसे गरीब लोगों की सेवा मैं निस्वार्थ भाव से करूँ। तुम अपनी कामना बता दो।"

"दस दिन पहले मेरे सौ सिक्के खो गये थे। मैंने वह धन एक पोटली में बांधकर अपने कमरे के आले में छिपा रखा था। जैसे सब गाँववालों का आप पर विश्वास है, मैं उनसे अलग था। मैं आपके मंत्रों पर विश्वास नहीं करता था,

इसलिए आज तक आपकी सेवा में नहीं आया। लेकिन आज लक्ष्मीपति जी मुझे ज़बरदस्ती यहाँ पर लाये हैं। कृपया बताईये कि मेरा धन किसने चुराया है। आप मेरा धन मुझे वापिस लौटा सकेंगे तो मैं आपका उपकार मानूंगा," कनकदास ने कहा।

मांत्रिक आँखे बंद करके सोच में पड़ गया। वह कई दिनों से यह बात जानता था कि इस गाँव का एक व्यक्ति कनकदास उसके जादू और मंत्र-तंत्रों पर विश्वास नहीं करता। अगर इसको अपने जाल में फंसाया जाए तो फिर गाँव में उसके विरुद्ध आवाज़ उठाने वाला कोई न होगा। साथ ही चारों तरफ के गावों में उस का नाम फैल जाएगा, इसलिए किसी भी प्रकार से इस की मदद करनी होगी।

ऐसा विचार करके थोड़ी देर बाद मांत्रिक ने आँखे खोलकर गंभीर स्वर में कहा— "ओह, पता चल गया।"

"स्वामी, मेरा धन किसने चुराया है ?" कनकदास ने नम्र स्वर में पूछा।

"तुम्हारे अत्यन्त आत्मीय व्यक्ति ने ही वह धन हड़प लिया है। मैं उसका नाम बताना नहीं चाहता क्योंकि धन पाप का मूल होता है। तुमने उसको बड़ी लापरवाही से ऐसी जगह रखा जिससे सब की दृष्टि आसानी से पड़ सके। उसे देखकर उस आदमी का मन विचलित हो गया और वह उसे हड़प कर ले गया। देवी जी का आदेश है कि मैं उस चोर के प्रथम अपराध को क्षमा कर दूँ। आज रात को वह चोर सौ सिक्के मुझे ला देगा। आधी रात तक नहीं लाएगा तो

मैं उस पर मंत्र फूंक दूंगा, जिससे उस की बोली बन्द हो जाएगी । यही नही, अगर वह तुम्हारा धन लाकर नहीं देगा तो मैं तुम्हें उसका नाम बता दूँगा । तुम कल इसी समय आकर अपना धन ले जाना,'' मांत्रिक ने सुझाया । कनकदास विनयपूर्वक मांत्रिक को प्रणाम करके चला गया ।

मांत्रिक ने सोचा कि उसकी बातें सुनकर चोर डर जाएगा और चुराया हुआ धन ला देगा। लेकिन अगर ऐसा न हुआ तो ? इसका मतलब है कि उसकी मंत्र-शक्ति से चोर भयभीत नहीं हुआ। यह बात खुल जाने पर उस पर से जनता का विश्वास उठ जाएगा । ऐसा विचार करके मांत्रिक ने अपने मन में निश्चय कर लिया कि उस के पास जो कुछ धन जमा हो गया है, उसमें से सौ सिक्के कनकदास को देदे ।

दूसरे दिन जब कनकदास उसके पास आया, तब मांत्रिक बोला, ''वत्स, देवीजी की कृपा अनुपम है। तुम भविष्य में धन के मामले में सावधान रहो। जो लोग असावधान रहते हैं, देवीजी उनकी सहायता नहीं करतीं । पिछली रात को चोर ने यह धन लाकर मेरे हाथ सौंप दिया था। यह ले लो।'' यह कह कर मांत्रिक ने कनकदास के हाथों में सिक्कों की पोटली धर दी ।

कनकदास ने सिक्के गिन कर देखा, उसमें ठीक सौ सिक्के थे ।

''महाप्रसाद है स्वामी ।'' यह कहकर कनकदास मांत्रिक के चरणों में प्रणाम करके वहाँ से चला गया ।

लक्ष्मीपति ने मांत्रिक को जो सौ सिक्के भेंट करने का निर्णय किया था, वह उसने मांत्रिक को दे दिये । तब वह सीधा कनकदास के घर पहुँचा ।

कनकदास ने झिड़क कर कहा, ''तुम्हारा ऋण तो चुक गया हैं न ? अब किस मुँह से धन मांगने आये हो ? मैंने यह साबित कर दिया है कि मांत्रिक मंत्र-शक्ति नहीं रखता है, इस कारण से शर्त के अनुसार तुम्हारा ऋण चुक गया है ।''

''तुमने कैसे और कब यह साबित किया कि

मांत्रिक मंत्र-शक्ति नहीं रखता है ? उसने तुम्हारा खोया हुआ धन ला दिया है न ?'' लक्ष्मीपति ने झिड़क कर कहा ।

''यदि सचमुच मेरा धन चोरी हो गया हो तो मैं अवश्य उस की मंत्र-शक्ति पर विश्वास करता,'' कनकदास ने मुस्कुराकर कहा ।

''तुम्हारी बातें मेरी समझ में नहीं आ रही हैं। साफ-साफ क्यों नहीं बताते ?'' लक्ष्मीपति ने भोला बनकर कहा ।

''वक्त पर तुम्हारा पिंड छुड़ाने के लिए मैंने सौ सिक्कों की चोरी हो जाने का झूठ बोल दिया। इस सचाई का पता न लगा सकने वाले मांत्रिक ने मेरा धन स्वयं देकर अपनी इज्जत बचा ली है,'' कनकदास ने कहा ।

''तब तो तुमने यह बात सब के सामने क्यों नहीं खोल दी ?'' लक्ष्मीपति ने पूछा ।

''इसलिए कि जनता तो मूर्ख है । वह मांत्रिक के प्रति अन्ध विश्वास रखती है। सच्ची बात बता दूं तो वे यह समझ कर मुझे पीटेंगे कि मैंने जान बूझ कर कह दिया है। वास्तव में कोई भी समझदार आदमी मांत्रिकों पर विश्वास नहीं करता । मूर्खों को सच्ची बात बताना खतरे से खाली नहीं है,'' कनकदास ने समझाया ।

''तुम को सब के सामने सच्ची बात बता देनी चाहिए थी। अगर जनता तुम्हें पीटती तो मैं तुम्हें बचा लेता,'' लक्ष्मीपति ने कहा ।

''ओह, यह भी खूब है । मांत्रिक को बदनाम करने से ज्यादा मेरे लिए अपनी इज्जत बचाना कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण है। अगर सब के बीच यह बात खुल जाएगी कि कनकदास साहूकार का कर्ज़ नहीं चुका पाया, इसलिए उसने अपने धन खो जाने का झूठ-मूठ प्रचार किया है तो मेरी प्रतिष्ठा क्या धूल में न मिल जाएगी ?'' कनकदास ने कहा ।

इस पर लक्ष्मीपति लाचार होकर अपने घर लौट गया । कनकदास उससे कहीं ज्यादा समझदार और होशियार निकला । ऐसी समझदारी ही हम सब के लिए ज़रूरी है जिससे कि हम ढोंगी मांत्रिकों और लक्ष्मीपतियों को झूठा साबित कर सकें ।

रंगनाथ की वसीयत

गंगा नगर में रंगनाथ नामक एक अमीर आदमी रहता था। बुढ़ापे की वजह से उसकी दृष्टि मंद पड़ गई थी और साथ ही वह बहरा भी था।

एक दिन रंगनाथ ने अपने बड़े पुत्र महेश को बुला कर कहा, "बेटा, तुम मेरी आँखों का इलाज करा दो, ताकि मैं अच्छी तरह से देख सकूँ।"

महेश ने अपने पिता की इच्छा का मीठे शब्दों में तिरस्कार करते हुए समझाया—"बाबूजी, आपको आँखों से दिखाई नहीं देता तो क्या हुआ। आपकी देखभाल करने के लिए मैं, आपकी बहू और पोते—हम सब हैं।"

रंगनाथ ने फिर अपनी आँखो के इलाज कराने पर ज़ोर दिया। महेश ने विवश होकर गाँव के एक देहाती वैद्य से अपने पिता का इलाज शुरु करवाया।

अब रंगनाथ का भाग्य समझिये या देहाती वैद्य के हाथ की करामात कि थोड़े ही दिनों में रंगनाथ अच्छी तरह से देखने लगा।

रंगनाथ ने बड़ी श्रद्धा के साथ इलाज कराने के उपलक्ष्य में अपने बेटे महेश की बहुत तारीफ की।

रंगनाथ की छोटी बहू ने यह घटना देखी और सुनी। वह अपने पति से बोली, "अजी, सुनिये तो। आपके बाबूजी आपके भाई की बेहद तारीफ कर रहें हैं। बाबूजी की प्रशंसा प्राप्त करना हमारे लिए भी आवश्यक है।"

रंगनाथ के छोटे पुत्र श्याम सुन्दर ने अपनी पत्नी के सुझाव की प्रशंसा की।

फिर क्या था, दूसरे दिन ही छोटा पुत्र शहर जाकर एक प्रसिद्ध वैद्य को बुला लाया।

वैद्य, रंगनाथ के घर में रहकर ही बड़ी दिलचस्पी से उसका इलाज करने लगा। परिणाम स्वरूप चन्द दिनों में ही रंगनाथ का बहरापन जाता रहा और वह अच्छी तरह सुनने

भवानी प्रसाद

लगा। रंगनाथ ने अपने प्रति श्रद्धा और भक्ति देख कर, अपने छोटे पुत्र की भी बड़ी तारीफ की।

कुछ दिन आराम से कट गए। एक दिन रंगनाथ ने अपने दोनों पुत्रों को बुला कर वसीयतनामा दिखाया, जिसमें यह लिखा था कि उसके मर जाने के बाद, उसकी ज़मीन और जायदाद का वारिस कौन है।

उस वसीयतनामे को पढ़ कर दोनों भाई सर पीटने लगे, क्योंकि रंगनाथ ने अपनी सारी जायदाद अपने गाँव के एक सराय के नाम लिख दी थी।

दोनों भाईयों ने सोचा कि इस संबन्ध में अपने पिताजी से वाद-विवाद करने में कोई फायदा नहीं है। उन्होंने गाँव के बुजुर्गों से मिल कर निवेदन किया, "आप लोग कृपया हमारे साथ न्याय करने का कष्ट उठाइए। न मालूम क्यों, हमारे पिताजी ने सारी जायदाद सराय के नाम लिख कर अपनी संतान के प्रति अन्याय किया है। आप लोग कृपया उन्हें समझा कर हमारा उद्धार कीजिए।"

बुजुर्ग लोग रंगनाथ से मिलने आये। उनमें से एक ने कहा, "रंगनाथ, आप का यह काम न्याय-संगत नहीं है। पंचेंद्रियों के सही ढंग से काम करते समय अगर किसी का देहांत हो जाता है, तो इससे अच्छा भाग्य और क्या हो सकता है! तुम्हारे दोनों पुत्रों ने तुम्हारी खोई हुई दृष्टि और श्रवणशक्ति को प्राप्त करवाया है। ऐसे व्यक्तियों को अपनी जायदाद में से एक कौड़ी भी दिये बिना, उससे वंचित रखना सर्वदा अनुचित है, अन्याय है।"

इस पर रंगनाथ ने हंस कर कहा— "मेरे पुत्रों ने मेरा इलाज करवाकर सचमुच मेरे प्रति बड़ा उपकार किया है। इस कारण मेरे परिवार में जो कुछ गड़बड़ हो रही है, उसे मैं देख व सुन पा रहा हूँ। इसके आधार पर मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि मेरी जायदाद को धार्मिक व परोपकार सम्बंधी कार्यों में लगाने से जो प्रयोजन सिद्ध हो सकता है, वह मेरे पुत्रों को दे देने से नहीं।"

रंगनाथ के मुँह से यह उत्तर सुनकर बुजुर्गों ने समझ लिया कि वह अपने पुत्रों के व्यवहार से असंतुष्ट है। उन लोगों ने महेश और श्याम सुंदर से पूछा, "तुम दोनों ने अपने पिता का जवाब सुन लिया है न ?"

महेश और श्याम सुन्दर ने बुजुर्गों को कोई जवाब नहीं दिया। उन्होंने शर्म के मारे अपने सर झुका लिये।

इस पर रंगनाथ ने अपने पुत्रों को समझाया— "तुम लोग दुःखी मत हो। यह सदा से चला आ रहा है कि माता-पिता जो संपति अपने पीछे छोड़ जाते हैं, वह इसलिए कि बुढ़ापे में उनकी संतान उनकी देखभाल करे। पर यह सच्चा प्रेम नहीं कहलाता। यह बात तुम लोगों के दिमाग में बिठाने के लिए मैंने वसीयत की बात चलाई है।"

यह सुन कर सबने रंगनाथ की ओर आश्चर्य के साथ देखा।

रंगनाथ ने प्यार भरी नज़र से अपने पुत्रों को देखकर कहा— "मेरे बार-बार कहने से पहले ही अगर तुम दोनों ने स्वयं मेरे अन्धेपन और बहरेपन का इलाज करवाया होता तो मैं और भी ज्यादा खुश होता, पर तुम दोनों ने ऐसा नहीं किया। इस वसयित ने तुम्हें एक सबक सिखाया है। दर असल मैंने जो जायदाद कमाई, उसे अपने पुत्र और पोतों को भोगते देख कर मुझे जो आत्म-सन्तोष होगा, वह और किसी प्रकार से नहीं !"

सब लोग रंगनाथ की बात से सहमत थे कि महेश और श्याम सुन्दर को पहले ही अपने पिता का इलाज करवाना चाहिए था। यही सच्चा प्रेम है।
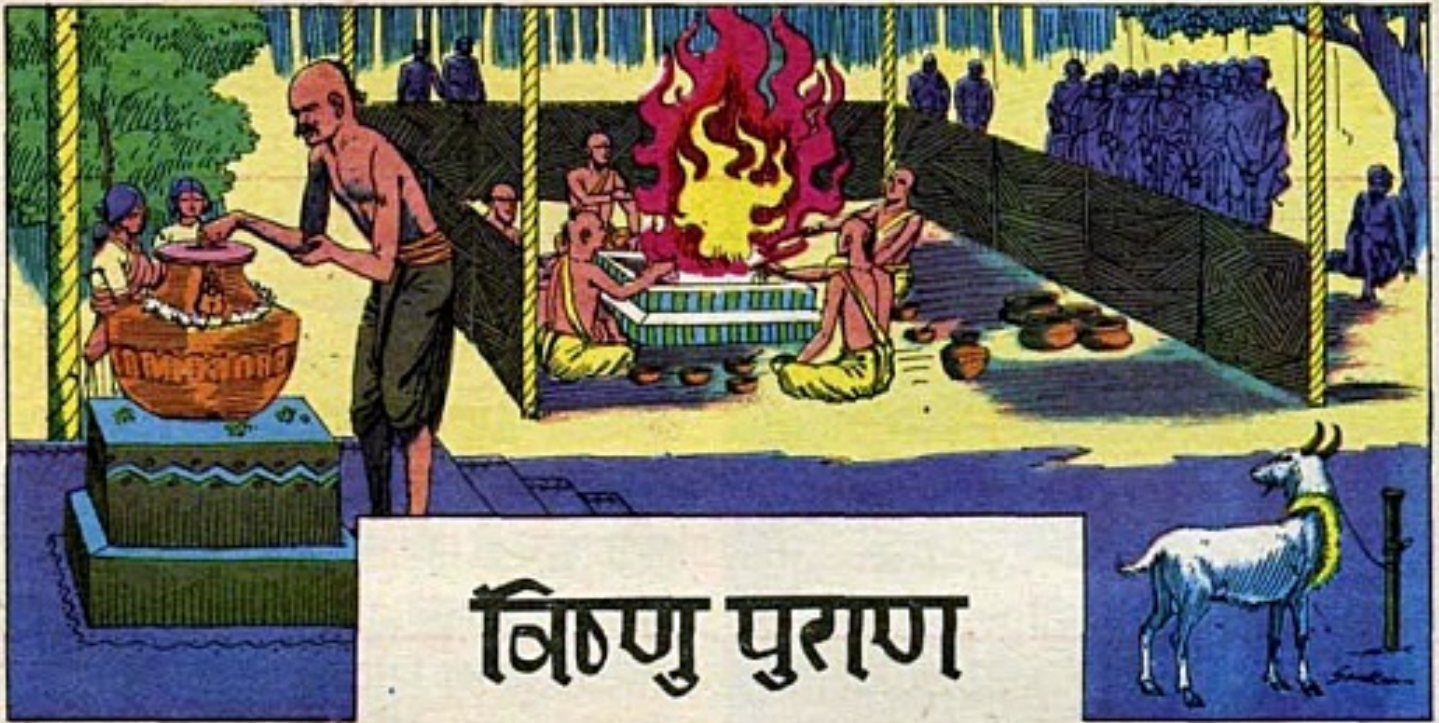
महामुनि सूत ने दशावतरों में से नौवे बुद्धावतार के बारे में सुनाना शुरु किया।

कलियुग का खूब विस्तार हुआ।

मानवता से क्रूर पशुत्व की दशा में परिवर्तित होने का समय था।

इस कारण मानव को अपने विवेक को सही रास्ते पर लगा कर अपना उद्धार करने की आवश्यकता आ पड़ी।

इस के पूर्व के युगों में किसी दुष्ट दानव का संहार करने के लिए विष्णु ने अवतार लिया था, अब उस कार्य को संपन्न करने का समय व्यतीत हो चुका था।

सारे मानव राक्षस बनकर एक दूसरे को लूटते, सताते, यज्ञ-याग के नाम पर निर्दय हो प्राणि-हिंसा को अपना लक्ष्य बनाकर मदिरा, मांस का सेवन करते हुए भोग-विलासी बनकर अज्ञान में पड़ गए और यह सत्य समझ न पाये कि मानव बुद्ध जीवी है, फलतः मूर्खता विच्छृंखल हो उठी। साथ ही यातनाएं, पीड़ा, दुःख, दारिद्रय आदि बढ़ गए।

परिपूर्ण मानव के रुप में किसी प्रकार के देवांश से दूर बुद्ध मूर्ति के नाम से जन्म धारण करके विष्णु को अपने समाज के मानवों का उद्धार करने के लिए युग के अनुरूप धर्म की स्थापना करनी पड़ी।

नेपाल देश के कपिलवस्तु नगर में राजा शुद्धोदन राज्य करते थे। उन की पत्नी मायादेवी ने एक सपना देखा—पूर्णिमा के चंद्र बिम्ब की भांति प्रकाशमान हो एक श्वेत हाथी आसमान से उतर कर उसके भीतर प्रवेश कर
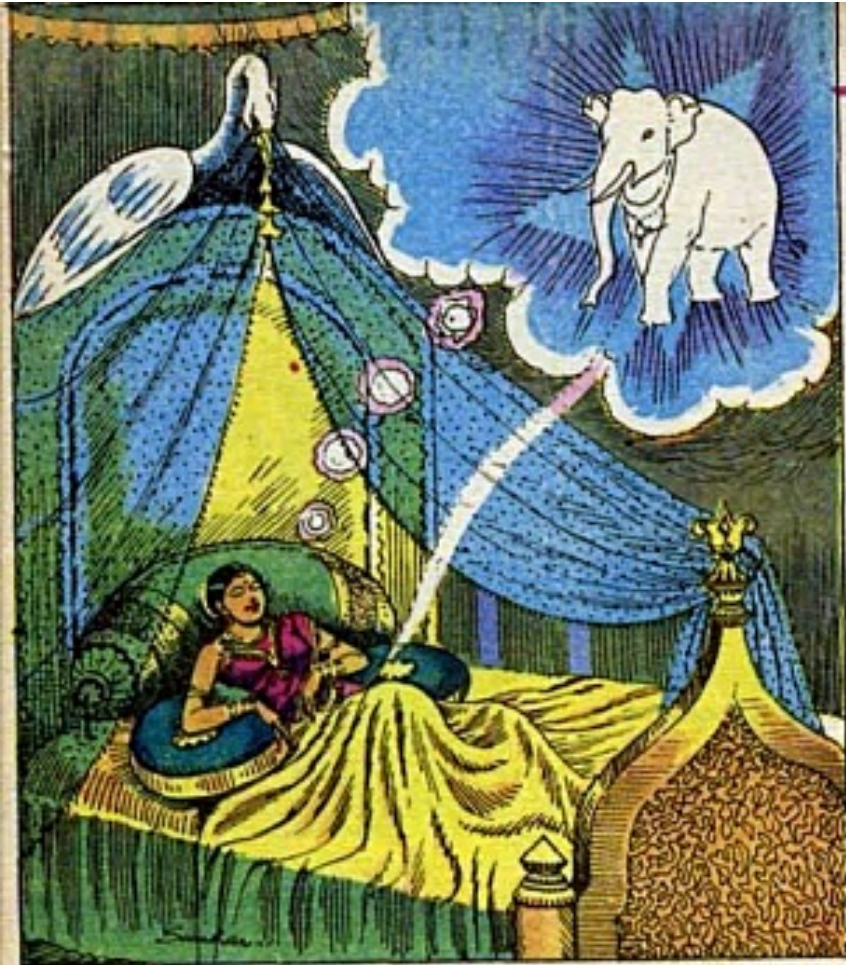
गया। सपने की बात ज्योतिषों को बताई गई। ज्योतिषियों ने उस सपने का अर्थ महाराजा से बताया कि एक महापुरुष महारानी के गर्भ से पैदा होने वाले हैं।

चन्द दिन के बाद मायादेवी ने पालकी में अपने मायके जाते हुए रास्ते में एक उद्यान में एक शिशु को जन्म दिया। वह वैशाख पूर्णिमा का दिन था।

सारे राज्य में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। परन्तु यह प्रसन्नता स्थाई न रह सकी। उस पर काली घटा छा गई। पुत्र के जन्म के बाद मायादेवी अधिक दिनों तक जीवित नहीं रही, इस प्रकार उन्होंने शुद्धोदन को दुःख में डुबो कर अपनी इहलीला समाप्त कर ली।

मांतृप्रेम से वंचित उस बालक को अपनी आँख की पुतली की भांति देखभाल करते हुए शुद्धोदन ने उसका नामकरणोत्सव मनाया। बालक का नाम गौतम सिद्धार्थ रखा गया। सिद्धार्थ शुक्लपक्ष के चंद्रमा की तरह दिन प्रतिदिन शोभायमान हो बढ़ता गया।

इसके बाद ज्योतिषियों ने राजकुमार की जन्म कुण्डली की जांच की। उन लोगों ने बताया, "महाराज, राजकुमार चक्रवर्ती बन जाएगा। समस्त विश्व के राजा, महाराजा तथा प्रजा इसके सामने सर नवाकर अपनी श्रद्धा प्रकट करेंगे।" ये शब्द सुनकर शुद्धोदन के आनन्द की सीमा न रही।

"...पर महाराज, राजकुमार के सन्यासी बन जाने की भी संभावना है!"

शुद्धोदन का कलेजा कांप उठा। उन्हें सारा संसार फीका मालूम हुआ। उन्होंने ज्योतिषों से पूछा, "एक ओर आप लोग बालक के चक्रवर्ती बन जाने की बात कह रहे हैं और फिर सन्यासी बन जाने की संभावना भी बताते हैं। यह परस्पर विरोधी बात कैसी?"

ज्योतिषियों ने पुनः राजकुमार की जन्मपत्री के चक्र की ग्रहों की गति का सूक्ष्म परिशीलन किया और निवेदन किया, "महाप्रभु! राजकुमार अत्यन्त कोमल हृदय वाला है। उसको चार दृश्यों को नहीं देखना चाहिए। वे चारों दृश्य हैं— रोग, बुद्धावस्था, मृत्यु और

सन्यास। ये दृश्य राजकुमार के जीवन में एक भयंकर तूफ़ान ला देंगे। इन दृश्यों को देखने के बाद तत्काल राजकुमार का मन विचलित हो जाएगा। इसलिए उचित सावधानी बरतनी पड़ेगी।"

सिद्धार्थ को बचपन से ही सब प्रकार की चिंताओं से दूर रख कर सदा मनोरंजन के कार्य क्रमों का प्रबन्ध किया गया। इस प्रकार शुद्धोदन ने अपनी तरफ से पूरी सावधानी बरती।

सिद्धार्थ एक दिन उद्यान में आसन पर बैठा हुआ था। एक हंस छटपटा कर तड़पते हुए उनकी गोद में आ गिरा। राजकुमार ने उसके शरीर में धंसे बाण को सावधानी से निकाला और पत्तों का रस निचोड़ कर उस के प्राण बचाये।

"यह हंस मेरा है। इसको मैंने बाण से मार गिराया है।" यों जोर से चिल्लाते हुए देवदत्त सिद्धार्थ के समीप आया।

देवदत्त सिद्धार्थ का रिश्ते का भाई था। "इस हंस के प्राण मैंने बचाये हैं। इसलिए इस पर मेरा अधिकार है।" सिद्धार्थ ने कहा। इस बात को लेकर दोनों के बीच वाद-विवाद हुआ। आखिर इसका निर्णय करने के लिए दोनों राजसभा में पहुँचे। धर्मशास्त्रियों ने एकमत हो यह फैसला सुनाया, "हंस के प्राण बचाने वाले सिद्धार्थ का ही इस पक्षी पर अधिकार है।"
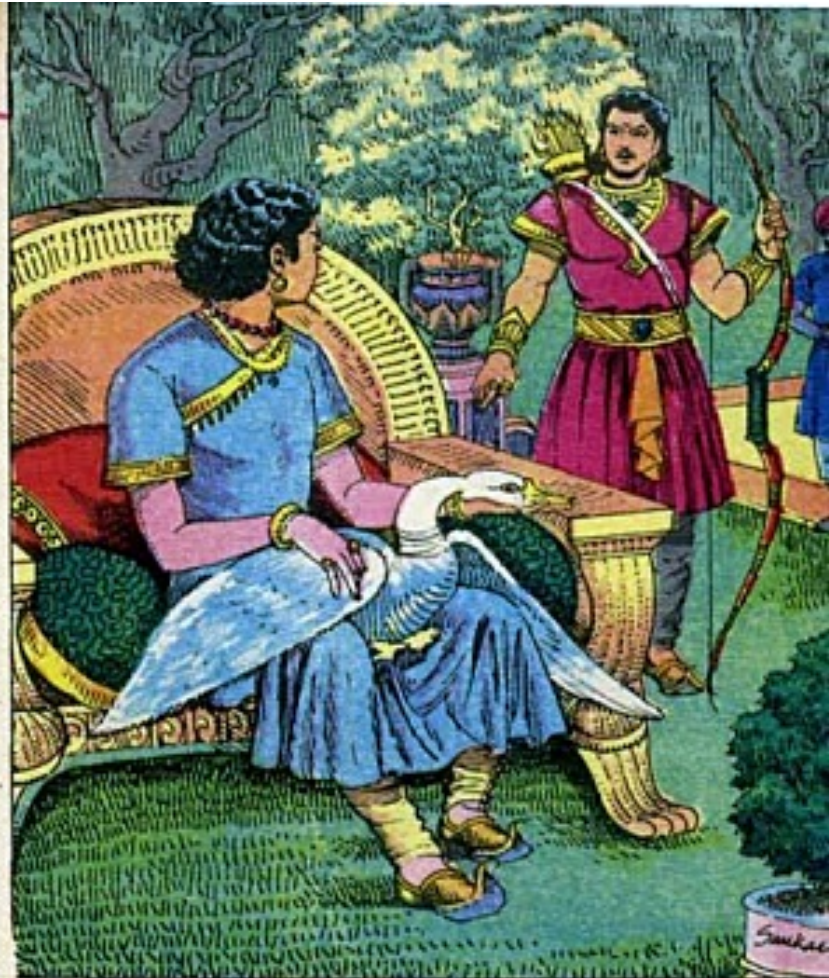
इस कारण से बचपन से ही सिद्धार्थ के प्रति देवदत्त के मन में ईर्ष्या और प्रतिस्पर्धा की भावना पैदा हुई।

शाक्य सुक्षत्रिय आयुघोष जीवी हैं। शिकार खेलना उनके लिए अत्यन्त प्रिय कार्य है। पर राजकुमार सिद्धार्थ शिकार खेलने में रुचि नहीं रखता था बल्कि उससे घृणा करता था। अस्त्र-विद्या व लक्ष्य साधना में कौशल प्राप्त कर उन्होंने अपार यश प्राप्त कर लिया था। फिर भी जानवरों का वध करना और उनको सताना कदापि पसन्द न था।

सिद्धार्थ शिकार खेलने नहीं जाता था, मनोरंजन के कार्य-क्रमों में भाग नहीं लेता था।

किसी प्राणी को दुःख भोगते देख उसका दिल तड़प उठता था। हिंसा को सहन नहीं कर पाता था। ये सब देख कर शुद्धोदन सोचने लगे कि राजकुमार की धमनियों में खून के बदले कहीं करुणा बहती हो । यों विचार कर अन्य राजकुमारों तथा युवराजों की भांति सिद्धार्थ को तैयार करने के उन्होंने अनेक प्रकार से प्रयत्न किये। उनके मनोरंजन के लिए अनेक प्रकार के उपाय किये गए। हर समय इस बात का प्रयत्न किया गया कि राजकुमार कभी भी अकेला न रहे, उसे कुछ भी गंभीर बात को सोचने का समय न मिले ।

राजकुमार जब भी नगर में जाता, तब रथ का सारथी चेन्ना इस बात की सावधानी बरतता कि रास्ते में कहीं रोगी, वृद्ध, शव, परिव्राजक सन्यासी राजकुमार की आँखों में न पड़े। इस की पूरी व्यवस्था के बाद ही वह राजकुमार को रथ पर बिठा कर नगर में ले जाता था ।

सिद्धार्थ जब वयस्क हुए, तब उनके भीतर सत्यप्रियता, तार्किक दृष्टि तथा हेतुवाद की भावना विकसित हुई। देखने में वे ऐसे सुन्दर थे, मानो स्वर्ग से पृथ्वी पर उतर आए हुए कोई देव कुमार हो। पर मनोरंजन तथा राजभोगों के प्रति उनका मन आकृष्ट नहीं होता था । राजकुमार का व्यवहार देख राजा शुद्धोदन अत्यन्त व्याकुल हो उठे। सिद्धार्थ अब विवाह के योग्य बन चुके थे, उन्होंने सोचा कि शायद विवाह हो जाने पर सिद्धार्थ का मन सांसारिक बन्धनों में रम जाए। इस विचार से उन्होंने सारे राज्य की क्षत्रिय वंशी सभी सुन्दर कन्याओं को निमंत्रित कर बुलवाया ।

राजकुमार को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए अंतःपुर की नृत्यशाला में कुछ कन्याओं के नृत्य एवं संगीत का आयोजन किया गया । युवराज के मन को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए सभी कन्याओं ने पूरी कोशिश की ।

उन कन्याओं का उचित उपहारों के साथ सत्कार करने के लिए थालियों में मोतियों के हार, स्वर्ण-भूषण सजाकर रखे गये थे ।

कई रमणियाँ अपने कार्य-क्रम समाप्त कर तिरछी नज़र से सिद्धार्थ को देखते हुए उनसे

पुरस्कार प्राप्त करके लौट रहीं थीं ।

अन्त में सिद्धार्थ अपने आसन से उठ कर चले जा रहे थे। तब उनकी दृष्टि एक स्तम्भ की ओट में खड़ी हुई सुन्दर रमणी पर पड़ी। उसके भीतर से कोई अद्भुत सौन्दर्य फूट रहा था। उसके शान्त बदन पर सौजन्यता दमक रही थी। वह एक सामन्त की पुत्री थी। उस का नाम यशोधरा था ।

सिद्धार्थ उस की ओर तुरन्त आकृष्ट हो गए। धीरे-धीरे चलकर वे उसके पास आए पर उस कन्या को देने के लिए थालों में एक भी चीज़ बची न थी। इसपर सिद्धार्थ ने अपने कंठ-हार को निकाल कर यशोधरा को भेंट किया ।

उसी क्षण यशोधरा के प्रति सिद्धार्थ के मन में अनुराग पैदा हुआ। यह बात महाराजा को मालूम हो गई। वे बहुत खुश हुए और यशोधरा के पिता जो एक सामन्त राजा थे, उनके पास महाराजा शुद्धोदन ने समाचार भेजा कि वे उनकी बेटी के साथ सिद्धार्थ का विवाह करने के लिए तैयार हैं ।

देवदत्त ने हठ किया कि यशोधरा के विवाह के लिए स्वयंवर की घोषणा करें और शौर्य तथा पराक्रम की परीक्षा करने के लिए प्रतियोगिताओं का प्रबन्ध करें। इस पर यशोधरा के पिता ने स्वयंवर की प्रतियोगिताओं के निमंत्रण पत्र सब के पास भेज दिये ।

हिंसा से दूर अनेक प्रतियोगिताओं के प्रदर्शन का प्रबन्ध किया गया। असंख्य युवक उन प्रतियोगिताओं में भाग लेने आ पहुँचे। उन सभी प्रतियोगिताओं में सिद्धार्थ प्रथम आये। उनके साथ अंतिम प्रतियोगिता तक केवल देवदत्त ने प्रतिद्वन्दी बनकर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। अंतिम प्रतियोगिता में सिद्धार्थ ने घुड़-सवारी तथा बाण विद्याओं में अपनी अपूर्व क्षमता का परिचय देकर यशोधरा के साथ पाणिग्रहण किया ।

इसके बाद यशोधरा तथा सिद्धार्थ का विवाह वैभवपूर्ण सम्पन्न हुआ ।

महाराजा शुद्धोदन को अपार मानसिक शान्ति मिली। वे यह सोच कर फूले न समाये कि उनका पुत्र एक गृहस्थ बन गया है और

संसार के माया-जाल में फंस कर वह आखिर चक्रवर्ती बनेगा ।

यशोधरा सब प्रकार से सिद्धार्थ के अनुकूल व्यवहार करने लगी ।

उसने समझ लिया कि उसके पति के अन्दर मानवता के मूल्यों के लिए प्रथम स्थान प्राप्त है । इस कारण वह भी सिद्धार्थ के विचारों के अनुकूल अपने को ढालने लगी । उनका दाम्पत्य जीवन आनन्द पूर्वक बीतने लगा ।

विवाह के बाद सिद्धार्थ ने अंतःपुर को छोड़कर बाहर आना-जाना बन्द किया ।

कुछ दिन बाद उस दम्पति के एक पुत्र हुआ जिसका नाम-करण राहुल किया गया । राहुल अपने माता-पिता तथा दादा की देखभाल में बड़े ही लाड़-प्यार में पलने लगा ।

एक दिन सिद्धार्थ ने रथपर सवार होकर अपने सारथी चेन्ना को नगर-दर्शन के लिए ले जाने का आदेश दिया । पहले सारथी के मन में संदेह पैदा हुआ, पर वह सिद्धार्थ के दृढ़ संकल्प से परिचित था, इस कारण से वह युवराज के आदेश का पालन करने से इन्कार न कर सका ।

रथ कपिलवस्तु के राजपथ पर आगे बढ़ रहा था । एक स्थान पर सामने से बुढ़ापे के भार से झुका हुआ एक आदमी गिरते-उठते हुए आ निकला । उसकी हालत बड़ी दयनीय थी । उस वृद्ध के प्रति कोई व्यक्ति सहानुभूति नहीं दिखा रहा था । कभी वह नीचे गिर जाता तो कोई उठाने का प्रयत्न तक नहीं कर रहा था । सब कोई अपने-अपने काम पर चले जा रहे थे ।

थोड़ी दूर आगे बढ़ने पर भयंकर बीमारी का शिकार बना एक रोगी सामने से आ गुजरा । देखने में वह दरिद्र लग रहा था । साथ ही वह सुरापान करता जा रहा था । इससे यह प्रतीत हो रहा था कि वह एक रोगी है ।

इसके बाद कुछ लोग एक शव को श्मशान में ले जाते हुए दिखाई दिये ।

सब के अन्त में संसार के माया बन्धनों को तोड़ कर भिक्षाटन करता हुआ एक भिक्षु दिखाई पड़ा ।

उस समय तक सिदार्थ के भीतर वैराग्य की
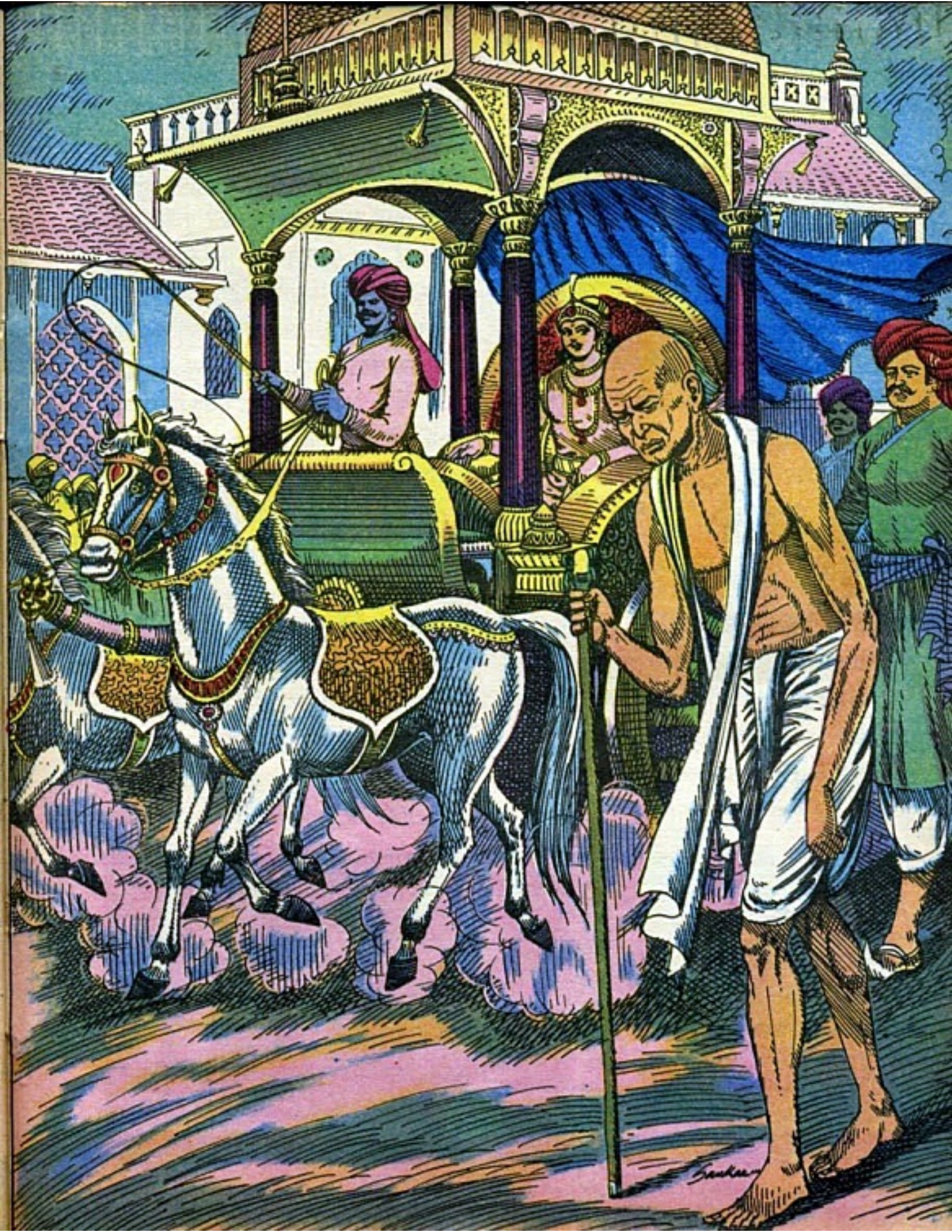
जो भावना थी, वह अचानक जाग्रत हो गई। सिद्धार्थ की बुद्धि प्रकाशमान हो उठी।

उसी वक्त सिद्धार्थ के अन्दर गौतम बुद्ध बन जाने का बीजारोपण हुआ।

राजकुमार ने अपने देखे हुए चार दृश्यों के बारे में सारथी से कई प्रश्न पूछे। सारथी को सच्ची बातें बतानी पड़ीं।

सिद्धार्थ ने सारथी को आदेश दिया कि वह रथ को राजमहल की ओर लौटा ले। सारथी ने रथ राजमहल में पहुँचा दिया।

उस दिन रात को सिद्धार्थ को नींद नहीं आई। राजमहल के बाहर चाँदनी छिटक रही थी।

यशोधरा अपनी शय्या पर सो रही थी। राहुल माँ के वक्ष से लगकर सो रहा था। माँ और पुत्र के चेहरे पर भोलापन दमक रहा था।

सिद्धार्थ को राजमहल छोड़ कर जाने का अपना निश्चय डगमगाता सा लगा। परन्तु उन्होंने अपने मन को कड़ा किया और उनको छोड़ कर कुछ कदम आगे बढ़े। फिर उनके पास लौट आये। इस प्रकार दो बार किया। तीसरी बार सिद्धार्थ ने अपने मन को दृढ़ बनाया यशोधरा के चरणों पर एक कुमुद रखा। उसके चरणों का स्पर्श किया और प्रणाम करके पीछे मुड़ कर अंतःपुर से निकल पड़े।

इसके बाद सिद्धार्थ सीधे अंतःपुर से अश्वशाला में पहुँचे। सारथी चेन्ना को जगा कर घोड़े को तैयार करने का आदेश दिया।

सारथी ने सोचा कि शायद राजकुमार चांदनी रात में घोड़े पर सवार हो घूमना चाहते हैं। थोड़ी देर पहले बूंदा-बांदी हो चुकी थी।

सिद्धार्थ घोड़े पर सवार हो गये। सारथी चेन्ना लगाम थामे घोड़े को हाँकने लगा। चारों तरफ सन्नाटा छाया हुआ था। ज़मीन में नमी थी, इसलिए घोड़े की टापों की ध्वनि सुनाई नहीं दे रही थी। घोड़ा राजमहल को पार करके राजपथ पर पहुँचा। सिद्धार्थ का मन अब स्थिर था। घर-गृहस्थी और संसार के मायाजाल को वे तोड़ चुके थे। उनको क्या करना है, यह निश्चय पक्का हो चुका था।

हस्त सामुद्रिक

राजगाँव में विमल जोशी नामक एक हस्त सामुद्रिक रहता था। वह केवल अपने गाँव में ही नहीं बल्कि चारों ओर के गाँवों में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था। फिर भी वह दरिद्र ही बना रहा और बड़ी कठिनाई से अपना परिवार चलाता था। इसका मुख्य कारण यह था कि वह बहुत बड़ा पंडित होते हुये भी धनवानों से अपनी विद्या के अनुरूप धन नहीं मांगता था। वे लोग अपनी इच्छा से जो कुछ दे देते उसी से वह सन्तुष्ट हो जाता था।

विमल जोशी की पत्नी राजलक्ष्मी को उसका यह व्यवहार बिल्कुल पसन्द नहीं था। वह सलाह दिया करती थी कि हस्त-रेखाएँ दिखाने के लिये आने वाले धनवानों से शुल्क पहले ही ले लेना चाहिये। परन्तु विमल जोशी उसे समझाया करता था, "हस्त सामुद्रिक शास्त्र बहुत महान है। करोड़पति भी हमारे घर आकर अपने हाथ की रेखाएँ दिखाते हैं और मेरे प्रति श्रद्धा और भक्ति प्रदर्शित करते हैं। ऐसे व्यक्तियों को यदि मैं पहले ही यह बता दूँ कि मेरी विद्या का इतना मूल्य देना होगा तो वह व्यापार बन जाएगा। ऐसी अवस्था में वे लोग मुझे एक पंडित जैसा आदर न देकर मेरे साथ एक व्यापारी जैसा व्यवहार करेंगे। इस कारण मैं कभी भी धन की मांग नहीं करूँगा। मुझे अपने ज्ञान को बाँटना है, बेचना नहीं। हाँ, यह बात और है कि खुशी से जो कोई कुछ दे दे, मैं उसे सहर्ष स्वीकार कर लूँ।"

"तब तो हमारी दरिद्रता कभी दूर नहीं होगी," जोशी की पत्नी झुँझला कर कह देती थी।

कुछ समय पश्चात उस देश के राजा को मालूम हुआ कि विमल जोशी महान हस्त सामुद्रिक हैं। राज दरबार में समस्त शास्त्र और

सरला त्रिपाठी

कलाओं में निपुण अनेक पंडित थे परन्तु हस्त सामुद्रिक शास्त्र का कोई उल्लेखनीय ज्ञाता न था ।

राजा के मन में विमल जोशी को अपना दरबारी पंडित बनाने का विचार आया, परन्तु कोई निर्णय लेने से पहले उन्होंने जोशी की परीक्षा लेनी चाही । उन्होंने मंत्री को अपना विचार सुनाकर जोशी को बुलाने के लिए कहा ।

मंत्री के द्वारा भेजे गये राजभटों ने विमल जोशी के घर पहुँच कर उनसे राजदरबार में चलने का अनुरोध किया । यह ख़बर सुनकर गाँव के लोग यह सोचकर प्रसन्न हुए कि अब जोशी की किस्मत खुलने वाली है । जोशी की पत्नी भी यह सोचकर प्रसन्न हो उठी कि उनकी दरिद्रता शीघ्र ही दूर हो जाएगी । परन्तु विमल जोशी पर कोई प्रभाव न पड़ा और वह चुपचाप बैठा रहा । इसपर गाँववालों को बहुत आश्चर्य हुआ । जोशी की पत्नी को उसपर बड़ा क्रोध आया ।

राजलक्ष्मी अपने पति को समझाना चाहती ही थी कि जोशी ने राजभटों से कहा, "आजतक मैंने किसी के घर जाकर हस्त-रेखाएँ नहीं देखीं । बड़े और महान् व्यक्ति भी स्वयं मेरे पास आते हैं । अगर राजा को अपनी हस्त-रेखाएँ दिखानी हैं तो वे यहाँ आकर दिखा सकते हैं । तुम जाकर अपने राजा से यही बात कह दो ।"

यह सुनकर गाँववाले और राजलक्ष्मी यह सोचकर डर गये कि राजा के आदेश का पालन न करने के कारण जोशी को अवश्य ही दण्ड मिलेगा ।

जब राजभटों ने जोशी का उत्तर राजा को सुनाया तो राजा एकदम चकित रह गए । वे यह सुनकर आश्चर्य में आ गए कि एक हस्त-सामुद्रिक में इतना स्वाभिमान है । उनके मन में ऐसे व्यक्ति से मिलने की इच्छा हो उठी । उन्होंने अपने मंत्री से कुछ परामर्श किया ।

एक सप्ताह बाद राजा स्वयं उस गाँव में पहुँचे । सारे गाँववाले विस्मय से भर उठे । जोशी की पत्नी हड़बड़ी में आ गई कि किस प्रकार राजा का स्वागत-सत्कार करे । परन्तु जोशी ज़रा भी विचलित न हुए । उन्होंने

सम्मानपूर्वक राजा का स्वागत किया और उनकी इच्छानुसार उनकी हाथ की रेखाएँ देखने लगे। बहुत सावधानी के साथ राजा की हस्त-रेखाओं की परीक्षा करने पर उन्हें कुछ विचित्र लगा। उन रेखाओं में राजा बनने का योग न था। इन रेखाओं के अनुसार उस व्यक्ति को जीवनभर दूसरों की सेवा करते हुए अपना पेट भरना था।

कुछ समय मौन रहने के बाद जोशी ने गहरी सांस लेकर कहा "महाराज, क्षमा कीजिए। मुझे ऐसा लगता है कि मेरा हस्त-सामुद्रिक शास्त्र सम्बन्धी ज्ञान पूर्ण नहीं है। आपकी हस्त-रेखाओं की परीक्षा से यह विदित होता है कि आपके भाग्य में राजा बनने का योग नहीं है, परन्तु आप तो महाराजा हैं ही।ऐसा लगता है कि मेरा ही सारा ज्ञान व्यर्थ हो गया है। मैं नहीं जानता कि ऐसा कैसे हुआ है। मेरे तो सारे जीवन का विश्वास ही टूट गया है।"

यह कहकर अपने पास में रखे हुए हस्त-सामुद्रिक शास्त्र के ताड़-पत्रों को एक ओर फेंक दिया और अपनी पत्नी को अंगारे लाने का आदेश दिया। ऐसी विचित्र बात सुनकर वह चकित रह गई। जोशी ने क्रोध भरी द्रष्टि से उसकी ओर देखा और पुनः आदेश देने को हुए कि उसी समय दूर खड़े हुए दो राजभट उनके पास आ गए।

उनमें से एक ने जोशी को प्रणाम करके कहा, "पंडित जी, इस बात में कोई संदेह नहीं है कि आप हस्त सामुद्रिक शास्त्र में पारंगत हैं। अभी आपने जिस हाथ की परीक्षा की वह राजा का नहीं है परन्तु उनके मुख्य सेवक का है। मेरे साथ खड़े राजभट के भेष में ये महाराज हैं और मैं इनका मंत्री हूँ।"

सारी बात सुनने पर जोशी, उनकी पत्नी और गाँववालों को अतीव प्रसन्नता हुई। इस प्रकार परीक्षा लेने के लिए राजा ने जोशी से क्षमा मांगी।

इस घटना के एक सप्ताह पश्चात राजा ने जोशी का अपूर्व सम्मान किया और उन्हें अपने दरबार में हस्त-सामुद्रिक पद पर नियुक्त कर दिया।

चोर का सत्कार

मोसुल का सुल्तान अपने देश का भ्रमण करते हुए एक रात को एक छोटे शहर में ठहर गया। सवेरा होने को था, उस वक्त उसके बसेरे में कोई कोलाहल शुरु हुआ। सुल्तान के परिवार में से एक व्यक्ति को सुल्तान के डेरे के समीप कोई चोर दिखाई दिया और चन्द मिनटों में वह कहीं भाग गया।

सुल्तान जाग पड़ा। उसने अपने सैनिक अधिकारियों तथा सेवकों को आदेश दिया कि किसी भी प्रकार से चोर को पकड़ कर बन्दी बनाएँ। यह बात स्पष्ट हो गई थी कि चोर सुल्तान के बसेरे से बाहर नहीं गया था। इस का अर्थ था कि वह महल के अन्दर ही कहीं छिपा हुआ था। पर बहुत खोजने पर भी कहीं उस का पता नहीं चला। तब तक सवेरा हो चुका था। समीप के घरों के निवासी भी वहाँ पर इकट्ठे हो गए।

सुल्तान इस घटना से क्रोध में आ गया उसे तुरन्त वहाँ से चल कर अपनी राजधानी में पहुँचना था।

इतने में अचानक एक कमरे के कोने से किसी के ज़ोर से छींकने की ध्वनि सुनाई दी। सैनिक अधिकारी झट उस दिशा में दौड़ पड़े। कमरे के कोने में घर के काम में लाने वाले वस्त्रों के ढेर लगे थे। चोर उस ढेर में छिपा हुआ था।

सैनिक अधिकारी उस को बाहर खींच कर मारने को हुए। इस पर चोर ने कहा, "महाशयों, थोड़ा रुक जाइए। मुझे सुल्तान साहब से गुप्त रुप में ज़रूरी बात कहनी है।"

इस पर एक सैनिक अधिकारी सुल्तान के पास पहुँचा और बोला, "हुज़ूर, चोर तो हाथ लग गया है। उसकी छींक ने ही उसको पकड़वा दिया है। लेकिन वह आप से एकांत में बात करना चाहता है। आप का क्या आदेश है ?"

[अरब्य रजनी की कहानी]

"उफ़ ! चोर मेरे साथ एकांत में बात करना चाहता है ? यह तो कोई छोटी-मोटी सेंध लगाने वाला चोर है । अच्छी बात, उसको मेरे पास भेज दो, मैं उसकी बात सुन लूँगा ।" सुल्तान ने कहा ।

चोर ने सुल्तान से कहा, "हुजूर, आप को मेरा अपूर्व सम्मान करना चाहिए । ऐसा करना तो दूर रहा उल्टे आपके अधिकारी मुझे पीटना चाहते हैं ।"

"तुम्हारा सम्मान किसलिए करना चाहिए ?" सुल्तान ने गरज कर पूछा ।

"हुजूर आपके अधिकारियों ने सारा महल छान मारा परन्तु मुझे पकड़ने में असमर्थ रहे और साथ ही मुझे बन्दी बनाने की आशा छोड़ दी । आप तो राजधानी में जाने की तैयारी कर रहे हैं । इस घटना को देखने के लिए बहुत से लोग जमा हो गए हैं । ये लोग आपके सैनिक अधिकारियों की बुद्धिमता, शक्ति एवं सामर्थ्य के बारे में न मालूम क्या-क्या सोचेंगे.... !" यह कहकर चोर रुक गया ।

सुल्तान ने चोर को ही उसका जवाब देने के आदेश की मुद्रा में खीझ कर सर हिलाया ।

"यह बात सब को विदित है कि चोर कहीं भागा नहीं बल्कि महल के भीतर ही कहीं छिपा हुआ है । ऐसे व्यक्ति को भी अगर आपके अधिकारी नहीं पकड़ पायेंगे तो जनता की नज़र में वे गिर जायेंगे । इससे उनको बचाने के लिए मैं ज़ोर से छींक उठा । मेरे प्राणों की अपेक्षा सुल्तान साहब की प्रतिष्ठा मेरी नज़र में कहीं ज़्यादा महत्व की है !" चोर ने कहा ।

"हाँ, तुम ठीक कहते हो ।" यह कहकर सुल्तान ने सर हिलाया और जनता के सामने ही उसके हाथों में हथकड़ियाँ लगवा दीं ।

इस के बाद सुल्तान उस शहर को छोड़ कर राजधानी की ओर रवाना हुए । वह अपने सैनिकों की नाकाबलियत के बारे में सोचता रहा। उसको लगा कि अगर उसके देश में सैनिकों की जगह इस चोर जैसे कुछ ही लोग हों जाए, तो देश महान कहलाए । थोड़ी दूर जाने के बाद उन्होंने चोर की हथकड़ियाँ निकलवा दी और उसे थोड़ा धन देकर मुक्त कर दिया ।

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार ५०)

पुरस्कृत परिचयोक्तियां दिसम्बर १९८४ के अंक में प्रकाशित की जायेंगी।

P. R. Herle

S. B. Prasad

★ उपर्युक्त फोटो की सही परिचयोक्तियां एक शब्द या छोटे वाक्य में हों। ★ अक्तूबर १० तक परिचयोक्तियां प्राप्त होनी चाहिए। ★ अत्युत्तम परिचयोक्ति को (दोनों परिचयोक्तियों को मिलाकर) ५० रु. का पुरस्कार दिया जाएगा। ★ दोनों परिचयोक्तियां केवल कार्ड पर लिखकर निम्न पते पर भेजें : **चन्दामामा फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता, मद्रास-२६**

अगस्त के फोटो - परिणाम

प्रथम फोटो : खिला सुमन!

द्वितीय फोटो : भोला बचपन!!

प्रेषक : कु. सुरभि, लकड़ी का टाल, जैनेन्द्र प्रेस के सामने, ललितपुर - २८४ ४०३

क्या आप जानते हैं ? के उत्तर

१. हेनरी ड्यूरंट, २. सोवियत रूस के अलेक्सी ए० लियोनोव, ३. नार्वे के निवासी रोनाल्ड अमुंड्सन (४ दिसंबर १९२२), ४. नार्वे के टिम्बोली, ५. स्वामी विवेकानन्द.

Printed by B. V. REDDI at Prasad Process Private Ltd., and Published by B. VISWANATHA REDDI for CHANDAMAMA CHILDREN'S TRUST FUND (Prop. of Chandamama Publications) 188, Arcot Road, Madras-600 026 (India). Controlling Editor: NAGI REDDI.

LIKE TO FLY INTO THE EXCITING WORLD OF ADVENTURE AND HUMOUR?
DOLTON
SUPER COMICS
CAN TAKE YOU THERE
EVERY FORTNIGHT!
IT COSTS ONLY Rs. 2.50 A COPY. EVIDENTLY THE MOST EASILY AVAILABLE COMICS MAGAZINE YOU'VE EVER READ.
ITS 36 FULL COLOUR PAGES TAKE YOU THROUGH MYSTERY AND EXCITEMENT TO A RENDEZVOUS WITH THE SUPER HEROES–
SUPERMAN
&
BATMAN
DOLTON COMICS
DC
DOLTON PUBLICATIONS
MADRAS 600 026

Results of Chandamama Camlin Colouring Contest No.36 (Hindi)

1st Prize: Anindyakumar Mansingh Mohapatra, Dhenkanal. *2nd Prize:* Rachana Singhal, Sardhana. Artar M. Namdji, Miraj. L.Gourisankar, Rayagada. *3rd Prize:* Anju Mittal, Allahabad. Anamika Sharma, Nanital. Rakesh Kumar Singh, Varanasi-221 004. Archana S. Singh, Bombay-400 083. Rajendra Ramprasad Shriwas, Ambad. Sarojani Negi, Hazaribagh. Nitin Mehrotra, Lucknow. Punit Adaniya, Udaipur. Amit Sikdar, Calcutta-700 019. Bina Bhatia, Kanpur.